स्मृति सत्ता भविष्यत्

तथा

अन्य श्रेष्ठ कविताएँ

*

विष्णु दे



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक : 338
पहला संस्करण : 1972
दूसरा संस्करण : 1987

स्मृति सत्ता भविष्यत्
तथा अन्य श्रेष्ठ कविताएँ
(कविता)
विष्णु दे

मूल्य : 48.00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

मुद्रक
पूजा प्रेस
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32



SMRITI SATTA BHAVISHYAT TATHA ANYA SHRESHTHA KAVITAYEN (Poems) by Vishnu Dey. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003. Printed at Pooja Press, Naveen Shahdara, Delhi-110032. Second Edition : 1987. Price : 48/-

स्मृति सत्ता भविष्यत् तथा अन्य श्रेष्ठ कविताएँ



विष्णु दे

कवि विष्णु दे
और उन का काव्य



विष्णु दे की प्रथम काव्य-कृति उर्वशी ओ आर्टेमिस (ओ = और), जब सन् १९३३ में प्रकाशित हुई, उस समय वे लगभग २४ वर्ष के थे और एम. ए. (अँगरेजी साहित्य) में पढते थे। इस प्रथम संग्रह में संकलित अनेक कविताएँ १९२९ में लिखी गयी थी, पाँच वर्ष पहले। भारतीय पुराणों में वर्णित उर्वशी और यूनान की प्राचीन गाथाओं की नायिका आखेटक देवी-कन्या आर्टेमिस (सूर्यदेव एपोलो की सहजात बहिन), को एक-साथ अपनी कविता का विषय बनाने वाले कवि के अध्ययन की पृष्ठभूमि कितनी विशाल और अन्तरराष्ट्रीय होगी, यह स्पष्ट हो जाता है। पुरुष और नारी के प्रेम-सम्बन्धों की प्रकृति की खोज का काव्यगत प्रयत्न बिना आन्तरिक उद्वेलन के, बिना प्रेम की पीड़ा सहे, सम्भव नहीं होता। अर्थात् बुद्धि और अनुभूति दोनों के स्तर पर विष्णु दे का कवि प्रमाणित था। इतना ही नहीं, विष्णु दे ने बाङ्ला कविता को एक नया आयाम दिया था—शैलीशिल्प का, भाषा का, नयी डगर का। काव्य में प्रतिध्वनित प्रेम की पीडा और नारी तथा पुरुष के सम्बन्धों को विराट् और महत्तर की खोज का आधार बनाने के प्रयत्न का प्रमाण मिला इस बात से कि एक वर्ष के भीतर ही उन का प्रेम-परिणय अपनी सहपाठिनी प्रणति राय चौधरी के साथ सम्पन्न हुआ। और काव्य की महत्ता का प्रमाण?—यह मिला काव्य के शलाकापुरुष रवीन्द्रनाथ ठाकुर से। मार्मिक है यह सन्दर्भ। उर्वशी ओ आर्टेमिस को गुरुदेव ने पढ़ा तो चकित हुए। पढते ही एक पत्र लिखा—जुलाई १९३३ में (बाङ्ला तिथि, २९ आषाढ, १३४०):

"तुम ने अपनी रचना में पर्याप्त साहसिकता दिखायी है। कुछ लेखक होते हैं जो आधुनिकता का दावा करते हैं, जब कि वास्तव में वह होते हैं पुरानी लीक के ही अनुगामी। तुम में मैं ने पाया है नयी धरती गोड़नें का आयास।......मेरे पग अवरुद्ध हुए जरूर, किन्तु इस प्रतीति को पाने के लिए कि गुड़ाई ज़ोरदार हुई है। *काल के गतिमान् चरण धीरे-धीरे रास्ते को साफ़ और सपाट बनायेंगे।* नये युग के यात्रियों में जो अधिक वेगवान् होंगे, सम्भव है उन की रुचि की दृष्टि से उन की यात्रा अनुमान से कहीं अधिक सरल प्रमाणित हो। मैं आशा करना चाहूँगा कि तुम्हारी कवि-लेखनी की अभिसार-यात्रा जैसे-जैसे साहित्यिक ख्याति की चरम मिलन-स्थली की ओर पहुँचेगी, वह परम्परा के झाड़-झंखाड़ों में नहीं उलझेगी—न प्राचीन के, न नवीन के।"

लगता है, रवीन्द्रनाथ का मन कविताओं से अभिभूत होता ही रहा, और अगले ही दिन उन्होंने एक दूसरा पत्र विष्णु दे को लिखा, पहले पत्र की अपर्याप्तता का निराकरण करने के लिए :

"ये कविताएँ ऐसे मस्तिष्क से उपजी हैं जो अभिनव और युवा है। इन में तरुणाई का वह वेग है जो तरंगों की भाँति उठता है और तट पर की चट्टानों से टक्कर लेता है। इन में शिलाखण्ड जैसी स्थिरता और लहरों की प्रवाहमयता की पारस्परिक क्रीड़ा परिलक्षित है।....तुम्हारी एक अपनी अलग काव्य-शैली है।"

काव्य-विकास :·

दो वर्ष के उपरान्त एक नया कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ—चोराबालि अर्थात् (चोर-बालू), जिस में १९२६ से १९३७ के बीच लिखी कविताएँ संगृहीत हैं। नदी किनारे की बालू के वे छोटे-बड़े ढेर जो हवा की क्रीड़ा से बन जाते हैं, जिन के नीचे दलदल होती है, और जो अपनी स्थूल इयत्ता के नीचे छिपी दलदल से हमें भरमाते हैं, हम उन में फँस जाते हैं। 'चोराबालि' के माध्यम से विष्णु दे ने अपनी काव्यानुभूति के उस अगले चरण को प्रतीकित किया है जहाँ प्रेम की प्रकृति के अन्वेषण को उन्होंने जीवन की द्विधा के परिवेश में पहचान कर आगे बढ़ाया—जहाँ सत्-असत्, उदारता और हीनता, करुणा और कठोरता के द्वन्द्वों की वास्तविकता को अंगीकार किया गया है—प्रेम जहाँ अपनी तल्लीनता में परिवेश को बाधक पाता है किन्तु उसे स्वीकारता भी है। 'उमचर', 'घुड़सवार', 'क्रेसिडा', 'ओफ़ेलिया' आदि लम्बी कविताओं में व्यंजना की समस्त

धारता के साथ मनुष्य को द्विधा और विरोधी तत्वों की समाहृति को रूपाकार दिया गया है।

इस संग्रह को पढ़ कर विष्णु दे के ज्येष्ठ समसामयिक सुधीन्द्र दत्त ने लिखा था :

"विष्णु दे की काव्यशैली कम से कम बाङ्ला साहित्य में इतनी अभूतपूर्व है कि उन की कविताओं का वास्तविक मूल्यांकन उस के लिए असम्भव है जिस में आदर-भावना और अनुभूति की ऊष्मा नहीं है।"

१९४१ से १९४७ के बीच पूर्वलेख, सात भाइ चम्पा और सन्द्वीपेर चर ये तीन मुख्य संकलन प्रकाशित हुए जिन में विष्णु दे की कविता ने व्यक्ति के सम्भ्रम को, व्यक्तित्व की खोज को, मानव-समाज के अस्तित्व और विचार-चिन्तन की प्रक्रिया के सन्दर्भ में, समूचे इतिहास के आलोक में, समझने एवं उद्भासित करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न और दृष्टि की अभिनवता के अनुरूप विष्णु दे अपनी शैली को उत्तरोत्तर परिपुष्ट करते गये और उस में सहजता का संचार करते गये।

जो द्विधा मानव के भाग्य में लिखी है, जिस सत् के प्ररूपण के लिए असत् की सत्ता को स्वीकारना पड़ता है, वह कवि के लिए बड़ी कष्टकर होती है, विशेष कर तब जब देश में और विदेश में, आततायियों के झुण्ड निरीह मानवता का दलन कर रहे हों, जब मदोन्मत्त शासन समस्त मानव-मूल्यों को निरस्त कर रहा हो और जब उस की छाया में पनपने वाले असामाजिक तत्त्व स्वार्थ और हिंसा का खुल कर खेल खेल रहे हों। यह दिन थे जब भारतमाता की दासता की शृंखलाएँ काटने के लिए छटपटाहट थी—सात भाइ चम्पा की लोककथा की दयनीय माँ का रानी-रूप प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न! अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर फासिस्टवाद का उदय, बंगाल का अकाल, राष्ट्रीय चरित्र का पतन, स्वाधीनता का स्वर्णिम प्रभात, देश का विभाजन आदि घटनाओं से उत्पन्न भावनाओं और प्रतिक्रियाओं की प्रतिच्छवि इन संग्रहों में, विशेष कर सन्द्वीपेर चर के प्रतीकों में प्रतिभासित है। अपने कथ्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए और व्यंजना की शक्ति को मूल स्रोतों से परिपुष्ट करने के लिए विष्णु दे देश के ग्रामीण अंचलों की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने छत्तीसगढ़ के लोकगीतों, सन्थालों के विद्रोह के गीतों, और ओराँव गीतों से प्रभावित काव्यरूपों और कथ्य की भंगिमाओं को अंगीकार कर के बाङ्ला कविता की आधुनिक शिल्प-रीतियों को नया आयाम दिया। सामयिक इतिहास के उद्वेलन ने विष्णु दे को कर्मक्षेत्र में अधिक सक्रिय

किया—उन्होंने फासिज़म के विरोध में लेखकों के संगठन को दृढ़ बनाने में प्रमुख भाग लिया। देश के नवयुवकों और युवतियों में नयी चेतना जगाने वाली गीत-नाट्यधर्मी संस्था 'इप्टा' (इन्डियन पीपुल्स थियेटर) के कार्यक्रमों का नेतृत्व किया।

१९५० में प्रकाशित अन्विष्ट अपने शीर्षक द्वारा ही उद्‌घोष करता है कि कवि के अन्वेषण की यात्रा एक ऐसी मंज़िल पर पहुँची है जहाँ उन की आस्था को आधार मिला है। 'सन्द्वीपेर चर' में जिस लक्ष्य की झाँकी थी और गाँवों की ओर बढ़ते डगों की हलकी ध्वनि थी, वह लक्ष्य सामने प्रस्तुत है, ध्वनि पूर्णरूप से मुखर है। कवि की आस्था है कि शहरी मनोवृत्ति जिस ग्राम्य-जीवन को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है, उसे हेय समझती है, वास्तव में हमारे प्राणों के बल का उत्स वहाँ ही, वहाँ की संस्कृति में ही, निहित है। कविता में पयार छन्द की पुनःस्थापना, काव्य-भाषा में गद्य की सहजता का प्रवेश भी विष्णु दे के अन्विष्ट तत्त्व है। इसी संग्रह में प्रकाशित है उन की अत्यन्त प्रसिद्ध कविता 'जल दाओ', जो जीवन-पादप के उक्त सांस्कृतिक मूल को सींचने का सन्देश देती है।

१९४६ से १९५३ तक रचित कविताओं का संकलन है—नाम रेखेछि कोमल गान्धार। अन्विष्ट की आस्था को स्थायित्व देने वाले एक आध्यात्मिक तत्त्व की अनुगूँज इस कोमल गान्धार में है। कविता के विविध छन्द-रूपों के अनेक मनोहारी प्रयोग यहाँ हुए हैं।

अगले दो-तीन वर्षों में रचित कविताएँ तुमि शुधु पँचीशे बैशाख और आलेख्य में संकलित हैं। एक विशेष तत्त्व विष्णु दे की कविताओं का प्रमुख अंग रहा है—उन का प्रकृति-प्रेम, प्रकृति-चित्रण और पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं के प्रति तथा उन में कोमल, मानवीय भावनाओं का प्रतिबिम्बन। 'दुरन्तस्मृति', 'एकटिबकुल', 'परवांशी' इसी प्रकार की रम्य कविताएँ हैं। 'चिरऋणी' शीर्षक कविता तो ऐसी रोमांचक है कि जीव-लोक में मानव और पशु का भेद तिरोहित हो जाता है और एक कुरंग एकाकी कवि को अपनी दृष्टि और चेष्टा के स्नेह से चिरकाल के लिए कृतज्ञ बना जाता है। आलेख्य की कविताओं में ध्वनित है मनुष्य के सात्त्विक स्वभाव की गाथा—उस की अवरोध-विजयिनी प्राणवत्ता, उस की सोद्देश्य जिजीविषा, और उस के उज्ज्वल भविष्य का विधान।

जिस कृति पर कवि को भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार घोषित किया गया है, और जो साहित्य अकादमी द्वारा भी पुरस्कृत है, वह है स्मृति सत्ता भविष्यत, जिस में १९५५ से १९६१ तक रचित कविताएँ संगृहीत हैं। कवि के काव्य-विकास के सभी चरणों की परिणति, उन के चिन्तन की सभी धाराओं का संगम, हमारे राष्ट्रीय जीवन के 'त्रिकाल-गामी आयामों का आकलन, शैलीशिल्प की

परिपक्वता और विविधता सब का स्थायी प्रतिफलन इस कृति में हुआ है कवि की दृष्टि ने यहाँ भुक्त इतिहास और मानव भाग्य, व्यक्ति का एकाकीपन और समाज की सामूहिक चेतना, वर्तमान के परिवेश की विच्छिन्नता और अतीत की अनवरतता, आदि द्वन्द्वों को भविष्य के उन्नयन की आस्था में समाहृत किया है। जिस शीर्षक पर संग्रह आधारित है उस के तीन शब्दों की लघुता में व्यक्ति और समष्टि के अतीत (स्मृति), वर्तमान (सत्ता) और भविष्य (भविष्यत्) का चित्रफलक प्रस्तुत किया गया है। कवि की जीवन-दृष्टि को जिस प्रतीक-कथा के माध्यम से यह कविता व्यक्त करती है, वह सन्दर्भ रवीन्द्रनाथ की एक रचना से लिया गया है। विवाह के मण्डप में सब तैयारियाँ हो चुकी हैं; अभ्यागत आ गये हैं; पान रचाये सजीली महिलाएँ उत्सव की तैयारी से प्रमुदित हैं; सारे सरंजाम के बीच वधू भी बनी-सँवरी लजायी हुई बैठी है—और, वर है कि आया ही नहीं, आ ही नहीं रहा। यहाँ वर प्रतीक है मनुष्य की 'सत्ता' का। आधुनिक जीवन में सभी कुछ तो है—ऊँची अट्टालिकाएँ, व्यापार-व्यवहार बाबू, मन्त्री और अफ़सर—किन्तु मनुष्य की सत्ता, उस की अस्मिता इस सब के बीच से ग़ायब है; अतः सब कुछ खोखला है। परिवेश के साथ सत्ता का विलगाव ही हमारी संस्कृति का संकट है। इस संकट से मुक्ति का उपाय है कि हम अपनी स्मृति को जाग्रत् करें, अतीत के उस स्वर्णिम युग से इसे सम्पृक्त करें जब प्रकृति का समस्त परिवेश मानव-सत्ता के साथ एकात्म था। उस तादात्म्य के माध्यम से ही हमारा भविष्यत् निरापद और सार्थक होगा। हमारा खण्डित व्यक्तित्व अपनी प्रकृत पूर्णता प्राप्त करेगा। चरम आस्था का यह आशावान् स्वर काव्य की उपलब्धि को रेखांकित करता है।

इस संग्रह के बाद के प्रकाशनों में उल्लेखनीय है: सोई अन्धकार छाई (१९६६ में प्रकाशित),—उस आदिम अन्धकार की वांछा, जो संहारक है तो सम्पोषक भी। अन्धकार का वह लोक जहाँ मृत्यु अपना दंश भूल जाती है, वह एक अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित होती है और, वास्तव में, कविता वहाँ ही जन्म लेती है।

संवाद मूलतः काव्य (१९६९), और इतिहासे ट्रैजिक उल्लासे (१९७०) अगले दो संग्रह हैं। पहली कृति के शीर्षक का भाव है कि पत्रों में प्रकाशित होने वाला प्रत्येक समाचार वास्तव में कविता है। संवाददाता की निष्पक्ष दृष्टि से जगत् की घटनाओं को कवि देखे अवश्य, किन्तु प्रत्येक संवाद के कार्य-कारण तथा कर्त्ता और कर्म के पार से मनुष्य के धड़कते हुए हृदय की झंकार को अनुभूति के स्तर पर अपनाये। दैनन्दिन जीवन की घटनाओं पर आश्रित इस संग्रह की कविताएँ

कवि की इस दृष्टि को प्रमाणित करती है। दूसरी कृति का शीर्षक विचित्र विरोधी स्थितियों को सामजस्य की लड़ी में गूँथ कर प्रस्तुत करता है। इतिहास की ट्रैजिडी उल्लास का कारण कैसे बन सकती है? भाव यह है कि मनुष्य के भाग्य की त्रासद स्थिति उसे जिस संघर्ष से जूझने को बाध्य करती है वह स्थिति जब प्रेरक बनती है तो व्यक्ति की क्षमताएँ प्रस्फुटित होती है और जूझने की निर्माणात्मक प्रक्रिया का एक अपना ही उल्लास होता है।

बहुमुखी कृतित्व :

अपनी विश्वविद्यालयीय शिक्षा पूरी करने के उपरान्त १९३५ में ही विष्णु दे प्राध्यापक हो गये और जब ३४ वर्ष बाद वह १९६९ में बंग सरकार के शिक्षा-विभाग से सेवा-निवृत्त हुए तब वह कलकत्ता के मौलाना आजाद कॉलिज में अँगरेजी के प्राध्यापक थे। स्पष्ट हो, विष्णु दे कवि के रूप में जितने क्रियाशील रहे, विश्व-साहित्य के अध्येता और समीक्षक के संयुक्त रूप में भी प्रायः उतने ही अधिक दत्तचित्त रहे। आधुनिक कविता के भाव-बोध की मुख्य प्रेरणा कवि को जहाँ से सर्वाधिक प्राप्त हुई वह है इलियट की कविता। विष्णु दे ने इलियट की जितनी अधिक कविताओं का अनुवाद जितनी अधिक संवेदना से सार्थक रूप में किया, वह शायद भारतीय भाषाओं में अनन्य है। इस के अतिरिक्त उन्होंने विश्व के मूर्धन्य कवियों में से लगभग ६६ कवियों को बाङ्ला में अनूदित किया है। इस प्रकार के दो संग्रह प्रकाशित है—इलियटेर कविता (१९५३) तथा हे बिदेशी फूल (१९५६)। समीक्षात्मक तथा अन्य-विषयों से सम्बन्धित निबन्धों के संग्रहों में उल्लेखनीय है: रुचि ओ प्रगति (१९४६), साहित्येर भविष्यत् (१९५२), माइकेल रवीन्द्रनाथ ओ अन्य जिज्ञासा, और रवीन्द्रनाथ ओ शिल्प-साहित्ये आधुनिकतार समस्या। हाल ही में अँगरेजी में एक विविध निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुआ है—इन द सन एण्ड द रेन।

व्यक्तित्व की समग्रता और शालीनता तथा सांस्कृतिक रुचियों की विविध चारुता का उदाहरण देखना हो तो विष्णु दे की तेजस्विता सामने आती है। कवि, समीक्षक, और निबन्ध-लेखक तो उच्चकोटि के विष्णु दे है ही, भारतीय तथा पश्चिमी क्लासिकल संगीत में उन की गहरी रुचि है, इस का इन्हें अभ्यास है। इन के काव्य में राग-रागिनियों के सन्दर्भ बड़ी सहजता और सार्थकता से आते है। स्वयं कई वाद्य-यन्त्र बजाते है। गीतकार और गायक है। चित्रकार और मूर्तिकार हैं।

ग्रामीण गीतों के प्रति आकर्षण और अपनी कविता में उन की पुनःस्थापना

की बात मैं ऊपर कह चुका हूँ। विष्णु दे ने लोक-जीवन में व्याप्त कला की परम्परा को विशेष आदर के साथ चर्चित किया। जामिनी राय के कृतित्व से प्रभावित हो कर उन के अवदान की विस्तृत व्याख्या करने वाले निबन्धों की रचना की। गाँव की धरती की सुरभि, वहाँ के गीत, वहाँ की कला, वहाँ के जीवन का सहज माधुर्य, वहाँ की हवा में बसी संस्कृति की सुवास, वहाँ के नदी, नाले, निर्झर और पहाड़ विष्णु दे के रोम-रोम में बने हैं और काव्य के अंश-अंश में प्रतिध्वनित, प्रतिबिम्बित हैं। यही कारण है कि कलकत्ता से लगभग दो सौ मील दूर बिहार के सन्थाल परगने में बसे गाँव रिखिया को उन्होंने अपना 'घर' माना है, बनाया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार की घोषणा के उपरान्त जब नवम्बर १९७२ में हम ने पुरस्कार-समर्पण-समारोह का आयोजन निश्चित किया तो अचानक ही विष्णु दे बीमार पड़ गये और हर्निया का ऑपरेशन उन्हें कलकत्ता में करवाना पड़ा। जैसे ही वह थोड़ा उठने-बैठने लायक़ हुए, उन्होंने तत्काल रिखिया जाने का कार्यक्रम बना लिया। लगभग दो महीने के आराम के बाद कुछ दिन पहले ही वह कलकत्ता लौटे हैं और १० फ़रवरी १९७३ को नियोजित पुरस्कार-समारोह में सम्मिलित होने योग्य हुए हैं। उसी अवसर के लिए उन की कविताओं का यह हिन्दी-अनुवाद ज्ञानपीठ ने प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में दो-एक बातों और स्थितियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक लगता है।

यह अनुवाद और अनुवादकों की दृष्टि :

भारतीय ज्ञानपीठ के वार्षिक साहित्य-पुरस्कार के निर्णय की प्रक्रिया का एक अंग है—विचारणीय कृतियों के सम्पूर्ण या आंशिक अनुवादों का प्रबन्ध। इस प्रक्रिया में अन्य कई कृतियों के आंशिक अनुवादों का प्रबन्ध किया गया था। स्मृति सत्ता भविष्यत की कुछ कविताओं के अनुवाद डॉ. भारतभूषण अग्रवाल ने प्रस्तुत किये थे। अब इस संग्रह के प्रथम खण्ड में स्मृति सत्ता भविष्यत की जिन ४२ कविताओं का अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, वह डॉ. भारतभूषण अग्रवाल ने किया है। विष्णु दे के अन्य काव्य-संग्रहों से कुछ चुनी हुई कविताओं के अनुवाद भी प्रस्तुत कर देना हम ने उचित और उपयोगी समझा अतः इस प्रकाशन का शीर्षक दिया है—'स्मृति सत्ता भविष्यत् तथा अन्य श्रेष्ठ कविताएँ'। 'स्मृति सत्ता भविष्यत' से अभिप्राय मात्र उस शीर्षक वाली एक लम्बी कविता से नहीं है, अपितु उन सभी कविताओं से है जो इस शीर्षक वाले

संग्रह से चुनी गयी हैं। अन्य संग्रहों से चुनी गयी कविताएँ 'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड में दी गयी हैं। इस प्रकार यह वर्तमान प्रकाशन दो खण्डों में है—एक ही जिल्द में। वास्तव में 'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड में बहुत अधिक कविताएँ नियोजित थीं जिन की सूची हम ने श्रीमती प्रणति दे के परामर्श से तैयार की थी किन्तु उन सब के अनुवाद यदि नहीं दिये जा सके तो कई कारणों से। एक तो यह कि पुरस्कार-घोषणा के उपरान्त समारोह की तिथि जब तक घोषित होती है, समय बहुत कम हाथ में रहता है कि प्रामाणिक अनुवाद हो जाये और पुस्तक समारोह के दिन तक छप कर आ जाये, ताकि उस का प्रकाशनोद्घाटन समारोह के मंच से किया जा सके। दूसरे, कविता-संग्रहों के सम्बन्ध में विशेष रूप से यह दृष्टि रहती है कि मूल कविताएँ देवनागरी लिपि में अनुवाद के साथ-साथ दी जायें ताकि मूल का रसास्वाद अधिक से अधिक मात्रा में सुधी पाठकों को उपलब्ध हो, और लक्ष्य यह भी रहता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की सामर्थ्य बढ़े, और भारत की सभी भाषाओं के लिए आदान-प्रदान के माध्यम की उसकी क्षमता प्रमाणित हो। देवनागरी लिप्यन्तरण देने से पुस्तक का आकार बढ़ता है, और उस का मूल्य भी; अतः पृष्ठ-संख्या सीमित रहे यह भावना पुस्तक के कलेवर को कम करती है।

लेकिन सब से बड़ी कठिनाई होती है अनुवाद के सम्बन्ध में। इस संग्रह के अनुवाद के विषय में कठिनाई और भी अधिक सामने आयी। प्रमुख कारण यह कि विष्णु दे की कविता न केवल आधुनिक भावबोध, जीवन-पद्धति, एवं परिवेश की उलझनों की संवाहिका है, बल्कि कवि के विशाल ज्ञान, अध्ययन और चिन्तन की परिधि में आये सभी प्राचीन-अर्वाचीन सन्दर्भों की सहज अवधारणा उन के काव्य में गुंथती चलती है और उसे अधिक संक्षिप्त और परिसंहत बनाती है। यही कारण है कि स्वयं बाङ्ला पाठकों को विष्णु दे की कविता एक ओर दुरूह लगती है, और दूसरी ओर उन की संस्कारशीलता को चुनौती दे कर उन की संवेदना की परिधि को विस्तृत करती है। ऐसी स्थिति में कवि की कविताओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने वाले रचनाकारों के सामने अभिव्यक्ति की और सम्प्रेषणीयता की समस्या उग्र हो जाती है। सन्दर्भ-विपुल, समास-युक्त, और परिसंहत कविता के अर्थ और अभिप्राय के प्रति आश्वस्त हो जाना अनुवादक की पहली समस्या है। दूसरी समस्या है उस अर्थ और अभिप्राय की मूल संवेदना को कवितानुगामी काव्यमय अनुवाद में प्रतिष्ठित करना। अनुवादक को काव्यरचना की प्रक्रिया का अनुभव होना आवश्यक है। यह स्वयं कवि हो तो मार्ग कुछ सरल हो जाता है। और, अनुवाद की भाषा पर

पूर्ण अधिकार होना तो अपरिहार्य है ही। 'स्मृति सत्ता भविष्यत' की कविताओं के अनुवाद के समर्थ अधिकारी डॉ. भारतभूषण अग्रवाल इस दृष्टि से हैं कि बाङ्ला भाषा और साहित्य से उन का परिचय पुराना है और घनिष्ठ है। बाङ्ला कृतियों के उन के द्वारा प्रस्तुत सुन्दर अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। और वह स्वयं कवि हैं।-डॉ. लोकनाथ भट्टाचार्य का साहचर्य साहित्य अकादमी में उन को निरन्तर उपलब्ध है। दोनों मित्रों ने दुरूह कविताओं के अर्थ की संगति बैठाने में (और इस प्रक्रिया में कविता के आनन्दलोक के सहयात्री होने का रोमांच अनुभव करने में) अनेक बैठकों का सुख प्राप्त किया है।

'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड की बहुत सी कविताओं का अनुवाद डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी ने किया है जो बाङ्ला, हिन्दी और अँगरेज़ी साहित्य के अधीती विद्वान् हैं, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं, बाङ्ला उन की मातृभाषा है, आकाशवाणी से हिन्दी के माध्यम से बाङ्ला भाषा की शिक्षा के लोकप्रिय वार्ताकार हैं। डॉ. चौधरी ने बहुत आड़े समय में अनुवाद का दायित्व स्वीकार किया और शक्ति भर उसे समय पर पूरा करने का प्रयत्न किया। त्वरा की इस स्थिति में उन की अनुवाद-प्रक्रिया यह रही कि पहले मूल कविता के भाव और ध्वनि को बाङ्ला और हिन्दी में समान रूप से प्रयुक्त होने वाले संस्कृतनिष्ठ शब्दों की तद्रूप अन्विति द्वारा सम-तोल पंक्तियों में उतारें, फिर हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप उसे ढालें। इस दूसरे चरण में—अभिप्राय की अवधारणा, हिन्दी में शब्द-अन्विति, एवं सम्प्रेषणीयता की स्थिति को साधने के प्रयत्न में मुझे डॉ. चौधरी का सहयोगी होने का अवसर प्राप्त हुआ है। अनुवाद के दायित्व की कठिनाई का मैंने प्रति वर्ष सामना किया है, अतः मैं जानता हूँ कि जो सध गया और सार्थक हो गया, वह तो पाठक की दृष्टि को सरल लगेगा (अच्छे अनुवाद का गुण ही यह है कि पाठक पढ़ते हुए समझे कि अनुवादक को आयास ही नहीं करना पड़ा, जब कि अनुवादक जानता है कि इस के लिए उसे कितना श्रम करना पड़ता है, कितना समय देना होता है) लेकिन जहाँ कहीं भी अस्पष्टता रह गयी या भाव-बोध में पाठक को उस की अपनी धारणा के अनुसार विपर्यय लगा, या लय की झाँकी तक नहीं दी जा सकी, वहाँ ही अनुवादक दोष-भागी माना जायेगा। जब ऐसी स्थिति आये तो हमारा अनुरोध है कि पाठक मूल को ही सामने रखें और उसे प्रमाण मानें।

इधर विष्णु दे की कविताओं के जो अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और उन में बहुत सी कविताओं का अनुवाद स्वयं विष्णु दे ने किया है, उन का अध्ययन अनुवाद की समस्याओं और कठिनाइयों को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करता है।

संग्रह से चुनी गयी हैं। अन्य संग्रहों से चुनी गयी कविताएँ 'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड में दी गयी हैं। इस प्रकार यह वर्तमान प्रकाशन दो खण्डों में है—एक ही जिल्द में। वास्तव में 'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड में बहुत अधिक कविताएँ नियोजित थीं जिन की सूची हम ने श्रीमती प्रणति दे के परामर्श से तैयार की थी किन्तु उन सब के अनुवाद यदि नहीं दिये जा सके तो कई कारणों से। एक तो यह कि पुरस्कार-घोषणा के उपरान्त समारोह की तिथि जब तक घोषित होती है, समय बहुत कम हाथ में रहता है कि प्रामाणिक अनुवाद हो जाये और पुस्तक समारोह के दिन तक छप कर आ जाये, ताकि उस का प्रकाशनोद्घाटन समारोह के मंच से किया जा सके। दूसरे, कविता-संग्रहों के सम्बन्ध में विशेष रूप से यह दृष्टि रहती है कि मूल कविताएँ देवनागरी लिपि में अनुवाद के साथ-साथ दी जायें ताकि मूल का रसास्वाद अधिक से अधिक मात्रा में सुधी पाठकों को उपलब्ध हो, और लक्ष्य यह भी रहता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की सामर्थ्य बढ़े, और भारत की सभी भाषाओं के लिए आदान-प्रदान के माध्यम की उसकी क्षमता प्रमाणित हो। देवनागरी लिप्यन्तरण देने से पुस्तक का आकार बढ़ता है, और उस का मूल्य भी; अतः पृष्ठ-संख्या सीमित रहे यह भावना पुस्तक के कलेवर को कम करती है।

लेकिन सब से बड़ी कठिनाई होती है अनुवाद के सम्बन्ध में। इस संग्रह के अनुवाद के विषय में कठिनाई और भी अधिक सामने आयी। प्रमुख कारण यह कि विष्णु दे की कविता न केवल आधुनिक भावबोध, जीवन-पद्धति, एवं परिवेश की उलझनों की संवाहिका है, बल्कि कवि के विशाल ज्ञान, अध्ययन और चिन्तन की परिधि में आये सभी प्राचीन-अर्वाचीन सन्दर्भों की सहज अवधारणा उन के काव्य में गुँथती चलती है और उसे अधिक संक्षिप्त और परिसंहत बनाती है। यही कारण है कि स्वयं बाङ्ला पाठकों को विष्णु दे की कविता एक ओर दुरूह लगती है, और दूसरी ओर उन की संस्कारशीलता को चुनौती दे कर उन की संवेदना की परिधि को विस्तृत करती है। ऐसी स्थिति में कवि की कविताओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने वाले रचनाकारों के सामने अभिव्यक्ति की और सम्प्रेषणीयता की समस्या उग्र हो जाती है। सन्दर्भ-विपुल, समास-मुक्त, और परिसंहत कविता के अर्थ और अभिप्राय के प्रति आश्वस्त हो जाना अनुवादक की पहली समस्या है। दूसरी समस्या है उस अर्थ और अभिप्राय को मूल संवेदना को कवितानुगामी काव्यमय अनुवाद में प्रतिष्ठित करना। अनुवादक को काव्यरचना की प्रक्रिया का अनुभव होना आवश्यक है। वह स्वयं कवि हो तो मार्ग कुछ सरल हो जाता है। और, अनुवाद की भाषा पर

पूर्ण अधिकार होना तो अपरिहार्य है ही। 'स्मृति सत्ता भविष्यत' की कविताओं के अनुवाद के समय अधिकारी डॉ. भारतभूषण अग्रवाल इस दृष्टि से हैं कि बाङ्ला भाषा और साहित्य से उन का परिचय पुराना है और घनिष्ठ है। बाङ्ला कृतियों के उन के द्वारा प्रस्तुत सुन्दर अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। और वह स्वयं कवि हैं।-डॉ. लोकनाथ भट्टाचार्य का साहचर्य साहित्य अकादमी में उन को निरन्तर उपलब्ध है। दोनों मित्रों ने दुरूह कविताओं के अर्थ की संगति बैठाने में (और इस प्रक्रिया में कविता के आनन्दलोक के सहयात्री होने का रोमांच अनुभव करने में) अनेक बैठकों का सुख प्राप्त किया है।

'अन्य श्रेष्ठ कविताएँ' खण्ड की बहुत सी कविताओं का अनुवाद डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी ने किया है जो बाङ्ला, हिन्दी और अँगरेज़ी साहित्य के अधीती विद्वान् हैं, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं, बाङ्ला उन की मातृभाषा है, आकाशवाणी से हिन्दी के माध्यम से बाङ्ला भाषा की शिक्षा के लोकप्रिय वार्त्ताकार हैं। डॉ. चौधरी ने बहुत आड़े समय में अनुवाद का दायित्व स्वीकार किया और शक्ति भर उसे समय पर पूरा करने का प्रयत्न किया। त्वरा की इस स्थिति में उन की अनुवाद-प्रक्रिया यह रही कि पहले मूल कविता के भाव और ध्वनि को बाङ्ला और हिन्दी में समान रूप से प्रयुक्त होने वाले संस्कृतनिष्ठ शब्दों की तद्रूप अन्विति द्वारा सम-तोल पंक्तियों में उतारें, फिर हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप उसे ढालें। इस दूसरे चरण में—अभिप्राय की अवधारणा, हिन्दी में शब्द-अन्विति, एवं सम्प्रेषणीयता की स्थिति को साधने के प्रयत्न में मुझे डॉ. चौधरी का सहयोगी होने का अवसर प्राप्त हुआ है। अनुवाद के दायित्व की कठिनाई का मैंने प्रति वर्ष सामना किया है, अतः मैं जानता हूँ कि जो सध गया और सार्थक हो गया, वह तो पाठक की दृष्टि को सरल लगेगा (अच्छे अनुवाद का गुण ही यह है कि पाठक पढ़ते हुए समझे कि अनुवादक को आयास ही नहीं करना पड़ा, जब कि अनुवादक जानता है कि इस के लिए उसे कितना श्रम करना पड़ता है, कितना समय देना होता है) लेकिन जहाँ कहीं भी अस्पष्टता रह गयी या भाव-बोध में पाठक को उस की अपनी धारणा के अनुसार विपर्यय लगा, या लय की झाँकी तक नहीं दी जा सकी, वहाँ तो अनुवादक दोष-भागी माना जायेगा। जब ऐसी स्थिति आये तो हमारा अनुरोध है कि पाठक मूल को ही सामने रखे और उसे प्रमाण माने।

इधर विष्णु दे की कविताओं के जो अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और उन में बहुत सी कविताओं का अनुवाद स्वयं विष्णु दे ने किया है, उन का अध्ययन अनुवाद की समस्याओं और कठिनाइयों को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करता है।

शब्दों के पर्यायवाची अर्थों से परे व्यंजना पर जब ज़ोर दिया जाता है, अर्थात् कविता को जब अनुवाद में कविता ही बनाने का प्रयत्न किया जाता है तब मूल की शब्दावलि काफ़ी कुछ छोड़नी पड़ जाती है। शीर्षक तक कुछ-के-कुछ हो जाते हैं। यह तो हिन्दी और बाङ्ला का सौभाग्य है कि वे संस्कृत से उत्पन्न सहजात बहिनें हैं अतः इन के बीच शब्दों का अवरोधी परदा अत्यन्त क्षीण है। भाव-बोध तो हमारे राष्ट्र की सभी भाषाओं में अपने इतिहास और समसामयिकता के समान परिवेश के कारण एक ही गूँज से अनुप्राणित है।

ज्ञानपीठ डॉ. भारतभूषण अग्रवाल, डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी का आभारी तो है ही जिन्होंने अनुवाद प्रस्तुत किये, वह डॉ. लोकनाथ भट्टाचार्य, श्री अजित-कुमार, श्रीमती कुन्था जैन, श्री जगदीश और श्री जगत शंखधर के प्रति भी कृतज्ञ है कि दूसरे खण्ड के अनुवादों या अनुवादों के परिमार्जन में उन का सहयोग प्राप्त हुआ।

भारतीय ज्ञानपीठ गौरवान्वित है कि १९७१ का पुरस्कार श्री विष्णु दे को उन की कृति स्मृति सत्ता भविष्यत के लिए समर्पित करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस पुस्तक के संयोजन में हमें श्रीमती प्रणति दे से जो सहयोग और सहायता प्राप्त हुई है उस के लिए हम उन के चिरऋणी हैं।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक-नियामक,
लोकोदय ग्रन्थमाला

दिल्ली,
गणतन्त्र दिवस : २६ जनवरी, १९७३।

अनुक्रम



स्मृति सत्ता भविष्यत्

(अनुवाद : डॉ. भारतभूषण अग्रवाल)

उर्वशी ओ आर्टेमिस

(अनुवाद : डॉ भारतभूषण अग्रवाल)

चोरावालि

(अनुवाद : डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी)

पूर्वलेख

(अनुवाद : डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी)

सात भाइ चम्पा

(अनुवाद : डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी)

सन्द्वीपेर चर

(अनुवाद : जगत शंखधर)

अन्विष्ट

(अनुवाद : जगदीश; डॉ. भारतभूषण अग्रवाल)

नाम रेखेछि कोमल गान्धार

(अनुवाद : डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी)

आलेख्य

(अनुवाद : डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी)

तुमि शुधु पँचीशे वैशाख

(अनुवाद : जगदीश)

स्मृति सत्ता भविष्यत

अनुवादक
डॉ. भारतभूषण अग्रवाल

स्मृति सत्ता भविष्यत

तोमरा नवीन, ए उदास
विषाद कि तोमादेरओ चेना ?
स्मृति हाने आदि महोदास,
भूमिदाम स्मृतिर यन्त्रणा
आमादेर चैतन्ये आकाश ।

तोमरा नवीन, आनागोना
कालान्तरे बांधे कि चेतना ?
बिश–बाइशेर इतिहास
करेछे कि कालेर गणना
तोमादेर सद्य सुखे माना ?

तोमरा नवीन, जानाशोना
ताइ बुझि हयनि प्रवास ?
निजवास एकान्त अजाना,
आजन्मप्रवासी, ताइ नाना
स्वदेशीय स्मृतिइ विलास ?

दुनियार हाटे हाटे केना
आधोचेना प्रबल उच्छ्वास,
अनात्मीय नव्य प्रतिभास,
तबु जेनो, आमराइ चेना ।

हठात् उठेछे देख पोलोतला,
हयतो पनेरो हते पारे के जाने सतेरो,

स्मृति सत्ता भविष्यत

तुम लोग नये हो, यह उदास विषाद
क्या तुम्हारा भी परिचित है ?
आदि महोदास स्मृति से टकराते हैं,
भूमिदासों की स्मृति की यन्त्रणा
हमारे चैतन्य पर छाया आकाश है ।

तुम लोग नये हो, कालान्तर में
आते-जाते क्या चेतना बाँध लेती है ?
बीस-बाईस वर्षो के इतिहास ने
क्या काल की गिनती की है ?
तुम्हारे नये सुख में बाधा दी है ?

तुम लोग नये हो, शायद इसी लिए
प्रवास से जान-पहचान नही हुई ?
अपने घर से नितान्त अनजान तुम
आजन्म प्रवासी हो, इसी लिए स्वदेश की
नाना स्मृतियाँ ही तुम्हारा विलास है ?

दुनिया की हाटों में खरीदा हुआ
अर्द्ध-परिचित प्रबल उच्छ्वास,
अनात्मीय नव्य प्रतिभास—
फिर भी जान लो, हमी तुम्हारे परिचित हैं ।

वह देखो, अचानक सोलह मंजिली इमारत खड़ी हो गयी है,
शायद पन्द्रह मंजिलें हो या क्या पता सत्रह,

आकाशके माटिके तामासा,
जिराफ तुलेछे येन गला किंवा एक टिरानोसरास,
आशेपाशे जलहस्ती, कुमीर, गोखुरा, हायेना, खेयाल,
पेतेछे दप्तर गदी गमस्ता फरास खासा,
बेखाप्पा बेयाड़ा विश्री,
कलकातार कपालेर गेरो ।

एइदिके नकल गथिक ऐदिके करिन्थी आयन डोरीय
के'लसनेर इंरेजी खेयाल ।
तबुओ याहोक् कालेर पलिते आहाम्मक साहेबी सखेर गाये
पड़ेछिल अभ्यासेर किछुटा प्रसाद,
बाडालेर हाइकोर्ट, गाओयारेर जादुघर
एमनकि लाटनी-प्रासाद एसेछिल चोखे सये,
एवं चोराइ साम्राज्येर देशज रास्ताय
अलिते गलिते आजगवि चिनजिर बाहारे
जमेछिल नयन ना होक किछु मनोहर
आलालेर दुलालेर हुतोमेर बुड़ो बुडो शालिकेर काटाराय
पक्षीबाबुदेर कायदाय केताय सच्छलता असच्छलताय ।

सरु फालि कलकातार जोलो माटि दियेछिल तबु किछु रस, किछु रौद्र
शचीदाके विनयके, तबु गोरा आरो बहु स्वदेशी छेलेरा
कलकाताके चिनेछिल, सुस्थ हते चेयेछिल सम्पूर्ण स्ववश ।

आज शुधु एकदिके मुमूर्षु विकार
आर अन्यदिके नाटुके प्रलाप निर्बोध निष्ठुर अमानुषिक अभद्र ।
के देबे धिक्कार काके आठारो सलाय
सारादेशे चतुर्दिके यत अवान्तर
उन्माद विलासी खेला !
रौद्र हानो, बान दाओ, हे सूर्य, हे चैतन्यआकाश
एइ नित्य अपघात दूर करो,

धरती आसमान का तमाशा,
मानो जिराफ ने या किसी महाकाय सरीसृप ने गर्दन उठा ली हो,
और चारों ओर जल हाथी, घड़ियाल, साँप, लकड़बग्घे, गीदड़
दफ़्तर गद्दी गुमाश्ते बढिया फर्श बिछा कर जमे हैं,
बेढंगे, बेतरतीब, बदसूरत,
कलकत्ते के माथे पर कलंक।

इधर नकली गॉथिक उधर कोरिन्थियाई, आयोनाई, डोरियाई इमारतें
के'लमन का विलायती खब्त।
पर कुछ भी हो, काल की उर्वर मिट्टी में अहमक साहबी शौक के सहारे
अभ्यास का थोड़ा सा प्रसाद जरूर पड़ा था,
बंगाले का हाई कोर्ट, गँवारों का अजायबघर
यहाँ तक कि लाटसाब का महल भी आँखों की आदत बन गया था,
और चोरी के साम्राज्य की देशज सड़कों पर
अलियों-गलियों में घिचपिच गन्दी बस्तियों की रौनक में
चाहे मनोहर कुछ न हो पर आँखें टिक गयी थीं
निकम्मे घर के लाडले उल्लुओं की, बूढ़े-बूढ़े शालिकों के झुण्डों की,
पक्षी बाबुओं के कानून-कायदों के ढंग पर, खुशहाली और तंगी में।

कलकत्ते की सँकरी नीची धरती ने फिर भी शचीश को विनय को थोड़ा-सा
रस दिया था, थोड़ी-सी धूप दी थी। फिर भी गोरा ने और अन्यान्य
स्वदेशी लड़कों ने
कलकत्ते को पहचाना था, स्वस्थ और सम्पूर्ण स्वाधीन होना चाहा था।

आज तो बस एक तरफ़ है अधमरों का विकार
और दूसरी तरफ है स्वाँग भरा प्रलाप, निर्बोध निष्ठुर अमानुषिक अभद्र।
कौन किसे धिक्कारे अठारहों मंज़िलों पर?
जब देश भर में चारों ओर निहायत फिज़ूल का
उन्माद और विलास से भरा खेल चल रहा हो!
धूप की चोट करो, बाढ़ भेजो, हे सूर्य, हे चैतन्य आकाश
यह रोज-रोज का अपघात दूर करो,

एर चेये दग्धदिने एने दाओ सालानपुरेर युगान्तेर भुशण्डी प्रान्तर ।

प्राण खुले ये घृणा करब एमन देखि उपाय नेइ,
प्राणेर पाड़ाय नेइ तो तार ठाँइ,
घोरागलिते घोरे यखन तखन बुझि देखि ताकेइ,
घरे किंवा सभाय से नय चाँइ ।
दाह्रवने हठात् यवे देखि से अमानुषिक चोख
मानते हबे चमके उठि भये,
ताइ बले ये घृणा करब एमन आमार साध्ये नेइ,
हार कोथाय वन्य पराजये ?
जन्तुइ तो जन्तुटा सेइ, यतइ तार होक् ना रोख्,
मनेर विश्वे कोथाय तार ठाँइ ?
मृत्यु तार नखरे बटे अर्थहीनताय असह,
आकस्मिक, जयओ ताइ चाइ ।
जयेर छवि ताइ तो मने, जयेर गान ताइ तो रटे,
घोचाते चाइ आकस्मिकेर पाप ।
ताइ बले कि करब घृणा समाने समान बिना ?
पायेर पाशे घुरते पारे साप,
आशेपाशे चौकाठे वा घरेर कोणेओ बिछा वा जोंक,
प्राणेर लोके नाइ थाकुक वासा,
एटाओ ठिक ये साप माडाले घृणाय शरीर रीरी करे,
पड़ते पारे जुतार चरम चाप,
ताइ बले कि बिछाटाकेइ बसते देब घृणार आसन,
जोंकके शेषे डाकब समाधरे ?
घृणार पाता हाओयाय झरे, घृणार माटि प्रखर भालवासा
सेइ शिकड़े जीवन बाँधि, ताइ—
मानुष तो छार, सिंहओ नय, मानब काके, शिरदाँड़ा नेइ,
देब ना ओके घृणारओ अभिशाप ।

इस से तो अच्छा है, इस दग्ध दिन में सालानपुर के युगान्त का श्मशान
भेज दो !

जी खोल कर उस से घृणा करें इस का कोई उपाय नहीं दीखता,
प्राणों के मोहल्ले में उस की कोई जगह नही है,
जब वह चोरगलियों में घूमता है तभी शायद वह दिखाई पड़ता है,
घर या सभा का वह मुखिया नही है।
शहरी जंगल मे जब वे हैवानी आँखें दिखती हैं
तब यह ठीक है मैं डर से चौंक उठता हूँ
पर इसी कारण मैं उस से घृणा करूँ मुझ में इतना दम नहीं,
वन्य पराजय में हार कहाँ है ?
जानवर तो आखिर जानवर ठहरा, उस में कितना ही जोर क्यों न हो,
मन की दुनिया में उस की जगह कहाँ है ?
उस के नाखूनों मे मौत जरूर है, अर्थहीनता में असह्य
और आकस्मिक, इसी लिए तो हम जय चाहते हैं।
इसी लिए तो मन में जय की तस्वीर है, इसी लिए तो जय का गीत
गूँजता है,
हम आकस्मिक का पाप मिटा देना चाहते हैं।
पर क्या इसी लिए हम उस से घृणा करें, बराबरी के बिना ही ?
पैरों के पास साँप घूमता हो सकता है,
आसपास चौखट पर या कमरे के कोने मे भी हो सकता है बिच्छू हो या जोंक,
प्राणों के लोक मे चाहे उन की जगह न हो,
यह भी ठीक है कि साँप को मारने पर घृणा से शरीर हहर उठता है,
जूते का भरपूर दबाव भी डाला जा सकता है,
पर क्या इसी लिए बिच्छू को बैठने के लिए घृणा का आसन दें,
जोंक को आखिरकार सभा-भवन में बुला लें ?
घृणा के पत्ते तो हवा में झर जाते हैं, पर घृणा की मिट्टी है प्रखर प्यार
वही तो मूल है जिस से हम जीवन रोपते हैं, इसी लिए—
जो आदमी तो दूर, शेर भी नहीं, हम उसे क्यो मारें जिस के रीढ़ की
हड्डी भी नहीं,
उसे हम घृणा का भी अभिशाप नहीं देंगे।

ए नरके
मने हय आशा नेइ जीवनेर भाषा नेइ,
येखाने रयेछि आज से कोनो ग्रामओ नय, शहरओ तो नय,
प्रान्तर पाहाड़ नय, नदी नय, दु:स्वप्न केवल,
सेखाने मजुर नेइ, चाषा नेइ,
येखाने रयेछि आज मने हय आशा नेइ,
बाँचबार आशा नेइ, बाँचावार भाषा नेइ,
सेखाने मड़क अविरत
सेखाने कान्नार सुर एकघेये निर्जला आकाले
मरमे पशे ना आर, सेखाने कान्नाइ मृत
कारण काराइ कोनो आशा नेइ
अथवा ता एत कम, ये कोनो निराशा नेइ।
चैतन्ये मड़क।

एखाने अभाव मृत्यु अनाहार अपघात सकाल-विकाल
मासे मासे मारीर चड़क,
एखाने अरण्य नेइ, हिंस्र पशु नेइ, नेइ आदिम मानुष,
वानप्रस्थवासी उदासी संन्यासी नेइ,
एखाने सभ्यता नेइ, हृदय शुकानो दीघि,
बुद्धि मजा खाल, चोख-कान सब बोध घोराइमालेर चेये बासि,
एखाने हयतो नेइ आपामर कोनोइ नरक।
केउ वा हिन्दिर ह्न्ये, केउ इंरेजिर हाङर,
नाना अवान्तर नाना शिकारीशिकार
अथच सबटा गौण अचेतन वा अर्धचेतन,
नरकेरओ व्यङ्गचित्र, मृत्युरओ विकार।

नरकेर दाह दाओ नरकेर आत्मग्लानि हे यम जीवन
अश्रु दाओ प्रासादे प्रासादे बसतिते मज्जाय मज्जाय अवसादे
यन्त्रणार वाणी दाओ मर्मे दाओ सजल शिकड़ फुले फले शाखाय पल्लवे
रूपान्तरे प्राण दाओ अभ्यस्तेर तिक्तेर क्षुब्धेर

इस नरक में
लगता है, आशा नहीं है, जीवन की भाषा नहीं है
हम आज जहाँ पर है वह कोई गाँव भी नहीं है, शहर भी तो नहीं,
न प्रान्तर है न पहाड़, न नदी, केवल दुःस्वप्न है,
वहाँ न मजूर है, न किसान,
हम आज जहाँ है वहाँ लगता है आशा नहीं है,
जीने की आशा नहीं है, जिलाने की भाषा नहीं है,
यहाँ लगातार महामारी है
वहाँ निर्जल अकाल में रोने की लगातार आवाज
अब मर्म में नहीं पैठती, वहाँ क्रन्दन भी मृत है
क्योंकि किसी को भी कोई आशा नहीं है
या फिर वह इतनी कम है कि कोई निराशा भी नहीं है।
चैतन्य की महामारी।

यहाँ सांझ-सबेरे अभाव मृत्यु अनाहार अपघात लगे रहते है
महीने पर महीने महामारी का चक्कर,
यहाँ न जंगल है, न हिंस्र पशु, न आदिम मनुष्य,
न वानप्रस्थवासी उदासी संन्यासी,
यहाँ सभ्यता नहीं है, हृदय सूखा पोखर है,
बुद्धि सड़ी नाली है, आँख-कान के बोध सब मानो चोरी के माल से भी
बासी है,
यहाँ शायद कोई सर्वग्रासी नरक भी नहीं है।
कोई अगर हिन्दी का बौराया कुत्ता है तो कोई अँगरेजी का घड़ियाल,
तरह-तरह के फालतू, तरह-तरह के शिकारी शिकार
फिर भी सब के सब गौण अचेतन या अर्धचेतन
नरक के भी कार्टून, मृत्यु के भी विकार।

नरक का दाह दो नरक की आत्मग्लानि दो हे यमरूपी जीवन
आँसू दो बस्ती के घर-घर में, अवसाद भरी हड्डी-हड्डी में
मर्म में यन्त्रणा की वाणी दो, फूल में फल में शाखों में पत्तों में गीली
जड़ दो,
अभ्यस्त तिक्त क्षुब्ध के रूपान्तर में प्राण भरो,

क्षिप्र प्रतिवाद में स्पष्ट वचन के चैतन्य की तीखी धार को
वैशाख की तपती धूप और झपटते अन्धड़ के शोर में
जीवन-मृत्यु की गोधूलि को निर्मलता प्राप्त हो।

राजा की बेटी आज दफ़्तर में जुटी है
राजा का बेटा काम की तलाश में है,
वे खूब जानते हैं कि आज के राजपाट में
वे कुछ भी नहीं हैं।
फिर भी वयस की उषा के संकट में
लड़का सीढ़ियों पर बैठा सोचता है,
लड़की तो सचमुच राजा की बेटी है
पर वह तो राजा का बेटा नहीं है।
पार्क की बेंच पर या फुटपाथ पर
दोनों अक्सर बातें करते हैं,
बहुतों के भाग्य आज खुले हैं
बस उन्हीं के लिए उलटा है।
इसी लिए तो बीच-बीच में राजा का बेटा
जुलूस निकाल कर शोर मचाता है।
राजा की बेटी इसी लिए तो जी खोल कर
हड़ताल का गौरव ग्रहण करती है।
वे प्यार करते हैं, इसी लिए तो घृणा से
तन-मन में आग लग जाती है।
धन के अभाव की अग्निवीणा में
यौवन को जीवन मिला है।

थकान में क्या डर है ?
दिन ढलने पर हम थक जायेंगे
कारखाने में ड्रिल, रन्दा या तकुए पर काम खत्म कर के
पतले, मोटे हाथों का सन्तोष
परिपूर्ण दिन की थकान।
ध्यान और वास्तव के बीच नाव चलाते इस पार-उस पार
किसी दल में सम्मिलित हो कर

दिगन्त तक फैले खेत में ट्रैक्टर के दीर्घ अभियान से
मिट्टी को जो थकान आगत फसल में फलती है
हम वैसी ही थकान चाहते हैं, श्रीमान् !
फिर उस के बाद सूर्य के संगाती के रूप में सूरज की तरह घर को वापसी ।
चौक वाली सड़क के बायें से, अस्पताल के दायें रास्ते के पार,
हर महीने भाँति-भाँति के झरे फूलों झरे पत्तों को रौंदते हुए
दिन ढले पहाड़ के आमने-सामने से
चिड़ियों के संगीत से परितृप्त थकान में भर कर अपनी-अपनी गृहस्थी की ओर,
कोई गाने में कोई और आमोद-प्रमोद में,
बिजली की बत्ती की पढ़ाई में या सिर्फ स्निग्ध अवकाश में रम जाने के लिए ।
या शायद बरामदे में बैठ कर या लेट कर, खाट पर, तख्तपोश पर
दिशा-जाल से आकाश के सीने पर चाँद का विकास देखते रहना,
किस तरह हर पखवारे प्रकृति के कौतुक से हँसिये सा चाँद अमावस्या या
पूर्णिमा में ढलता है ।
थकान में क्या डर है ? श्रीमान् यह वह थकान थोड़े ही है,
शोषित समाज के बेकसूर ग्रामजनों की थकान बड़ी थकन भरी होती है;
ज्ञान और वास्तव में एकान्त विन्यस्त जीवन के कर्म से थकान नहीं होती, भैया
हम सभी वैसा थकान भरा अवकाश चाहते हैं ।

सभी जानते हैं रवीन्द्रनाथ की वह कहानी :
सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं, आँगन में मेहराबदार मण्डप तन गया है,
भट्टी चेत रही है, ड्योढ़ी पर की शहनाई
शुद्ध स्वरों से हवा में तैरती सर्वत्र व्याप्त है,
भण्डार में पकवान चिने हैं, तरह-तरह के सरंजाम से
भीतर का कोठा भर गया है, दहेज़ का अम्बार लगा है,
पड़ोसिन सहेलियाँ उत्कण्ठा से शोर कर रही हैं,
बच्चे मस्त खेल रहे हैं, निस्सन्देह कन्या की छाती भी
आग्रह और आवेग से धक-धक कर रही है, शादी के लिए सभी कुछ तैयार है ।
यहाँ तक कि बराती भी आ पहुँचे हैं, भीड़ लग गयी है,
शंख बजने ही वाला है, सुहागिनों के पान रचे ओठों से
गीत-लहरी उठने ही वाली है,
सिर्फ वर नहीं है—

यह रवीन्द्रनाथ की कहानी है, कवि ने गजब के रूपक से
हम सभी के जीवन की तस्वीर आँक दी है,
मर्मभेदी और बड़ी अद्भुत—
शादी की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं,
यहाँ तक कि बाराती भी आ पहुँचे हैं, सिर्फ वर नहीं है-
या शायद वे बाराती न हों, सब के सब बाराती न हों,
उस भीड़ में चोर है, जुआचोर है, नामी-गिरामी या नगण्य,
तरह-तरह के भिखारी भी हैं, कोई बाबू तो कोई साहब,
आत्मा के द्वार पर, मन की सड़क पर
समाज के घूरे की सफाई-लॉरी पर चढ़े सत्ता के भिखारी,
बीमार, फिर भी गन्दी बस्तियों के वासी नहीं, आढ़त में दफ्तर में गद्दियों
पर डटे,
तन-मन-प्राण से बीमार, पर शायद धन या क्षमता से नहीं—
तरह-तरह के बाराती हैं, सिर्फ वर नहीं है।

वर सत्ता खोजता फिर रहा है, अपना आत्म-परिचय
खेतों में, गंजों में, बन्दरगाहों में वह अपनी सत्ता खोजता है, अपनी शनाख्त
पाँच जनों के दर्शन में, समाज के आतशी प्रतिबिम्ब में,
उसे अपनी सत्ता नहीं मिलती, जो बस फूल की तरह
धूप-वर्षा-छाया में मिट्टी से
जड़ों शाखों पत्तों के प्राकृतिक आर्केस्ट्रा में फूट उठती है,
उस फूल की तरह जिस की सत्ता मिट्टी में धूप-वर्षा में जड़ों-शाखों में निहित है,
यहाँ तक कि फूलदान में सजे होने पर भी।
तभी तो आज हमारी सत्ता नहीं है, घर में या सभा में, बैठक में या चायखाने में,
फूलदान की बौद्धिकता में भी नहीं, लाख कोशिशों के बावजूद।

यह उपमा बहुमुखी है, अनेक स्तरों पर इस का प्रयोग सरल है
व्यक्ति के लिए, समाज के लिए, देश के लिए।
देश, सोचो तो, सुजला सुफला यह मलय-शीतला माँ, यह देश
छिन्न-भिन्न, फिर भी प्राचीन परिचय में सत्ता के चैतन्य का धनी
प्रज्ञा में संहत, स्मृति के मूल से धन्य, काल के बगीचे में।
पर फिर भी विच्छिन्न, चकनाचूर, हजारों दागों से घायल, विकल

स्वप्नेओ कपाले नेइ, एमन कि फरासीस् मान्दारिन-मन्य सुरा
निदिष्ट या मोटामुटि एक शय्या थेके अन्य शय्यार विलासे
आत्मजीवनीय अवसादे अस्तित्वेर काकविष्ठा सोंजा,
ताओ नितान्त असार एइ पापपुण्यहीन देशे
दग्ध दिने विपण्ण रात्रिते ।

आमरा नरके आछि, अथच से ज्ञान नेइ मने
ताइ विवाहमभाय प्रच्छन्न नरके आज वर नेइ,
अथच राजार मेये एवं राजार छेले नरकेर देउड़िते
रास्ताय प्रस्तुत आछे स्वागतेर प्रतीक्षाय,
शुधु स्वभावे प्रतिष्ठा चाय प्रतिवादे
प्राण मान चाय वराभय, ताराइ ये वरकने ॥

स्वप्न में भी हमारे भाग्य में नहीं, यही नहीं, फ्रांस के मान्दारिनों का सा
सुख भी
जो मोटे तौर पर एक सेज से दूसरी सेज तक के विलास में सीमित है,
अल्जीरियाई अवसाद में अस्तित्व की बीट की खोज,
सो भी नितान्त असार इस पाप-पुण्य-हीन देश के
जलते दिनों बुझी रातों में—वह भी हमारे भाग्य में नहीं।

हम नरक में हैं, यद्यपि हमारे मन में इस की चेतना नहीं है
तभी तो विवाह मण्डली के प्रच्छन्न नरक में आज वर नहीं है,
फिर भी राजा की बेटी और राजा का बेटा नरक की ड्योढ़ी पर
रास्ते में तैयार खड़े हैं अपने स्वागत की प्रतीक्षा में,
सिर्फ स्वभाव के कारण वे प्रतिष्ठा चाहते हैं, प्रतिवाद में,
प्राण चाहते हैं, मान चाहते हैं, अभयवर चाहते हैं, वे ही तो वर-वधू हैं॥



वृथा स्मृतिर पाहारा

वृथा स्मृतिर पाहारा,
वृथा द्वार बाँधि, यदि एकबार जानलाटा खुलि
दिनरात्रि पलातक अन्धकार कालेर पाहाडे ।

यौवनेर निःसङ्गता आज बाजे वृद्ध हाड़े हाड़े,
हृदयेर चेरापुञ्जि नभ्यन्याये वर्षिष्णु साहारा ।

आमि ये एकान्त शून्ये, कबे छिले स्वदेशे ता भुलि ।

तबु यदि आसो, देखि बाड़ँ सेइ बकुलेर चारा;
तोमारइ बागान करि, यदि आसो, नित्य फुल तुलि ।

अस्ते याय सूर्य, आसे प्रतिदिन आकाशे गोधूलि,
विवाहेर रङे राङा कपाले एकटि लाल तारा ।।

२१।८।५६

व्यर्थ है स्मृति का पहरा

व्यर्थ है स्मृति का पहरा,
व्यर्थ ही द्वार बन्द करता हूँ, अगर एक बार खिड़की खोल दूँ
तो दिनरात भाग जायें अँधेरे काल के पहाड़ पर।

यौवन की निःसंगता आज बुड्ढी हड्डियों में टीसती है,
हृदय का घेरापूँजी नये तर्क से विस्तृत सहारा बन गया है।

मैं तो एकान्त शून्य में हूँ, तुम स्वदेश में कब थीं यह भी याद नहीं।

फिर भी अगर तुम आयी तो बकुल का यही पौधा बढ़ता देखूँगा;
अगर आयी तो तुम्हारे ही बाग़ की टहल करूँगा, रोज़ फूल चुनूँगा।

सूर्य अस्त होता है, प्रतिदिन आकाश में गोधूलि आती है,
उस के माथे पर विवाह के रंग में रँगा एक लाल तारा दमक उठता है।।

३१।८।५६

से कवे

से कबे गेयेछि आमि तोमार कीर्तने
कृतार्थ दोहार ।
पदावली धुये गेछे अनेक श्रावणे;
स्मृति आछे तार ।

रौद्रे-जले सेइ-स्मृति मरे ना, आयु ये
दुरन्त लोहार ।
शुधु लेगे आछे मने व्यथार स्नायुते
मर्चेर बाहार ॥

१९५६

न जाने कब

न जाने कब मैं ने गाये थे तुम्हारे कीर्तन में
दुखार्त दोहे ।
अनगिनत गायनों में वह पदावली घुल चुकी है,
उस की याद बची है ।

धूप-पानी से वह याद मरती नहीं, उम्र आखिर
कठिन लोहे की ठहरी ।
सिर्फ़ मन के भीतर दर्द की रगों में छायी है
मोरचे की बहार ॥

१९५९

से कवे

से कवे गेयेछि आमि तोमार कीर्तने
कृतार्थ दोहार।
पदावली धुये गेछे अनेक श्रावणे;
स्मृति आछे तार।

रौद्रे-जले सेइ-स्मृति मरे ना, आयु ये
दुरन्त लोहार।
शुधु लेगे आछे मने व्यथार स्नायुते
मर्चेर बाहार॥

१९५६

कोणार्क की देहरी पर

यहाँ शून्य का बोझ है   मानो महाक्षय के कारण
धरती से समुद्र तक अँधेरा हो   विश्व भर के हृदय में
रंगहीन ग्लानि ने   सत्ता को ही दबोच लिया हो
मानो मानव की वाणी   गला घुट जाने से मर गयी हो।

यहाँ सभी कुछ शून्य है   अन्धकार बेछोर
आनन्द का आत्मदान   प्रेम, मैत्री, प्रीति
शिल्प का निर्माण अथवा   कर्म की आरती
जीवन में जो कुछ भी पवित्र है   विश्वस्त है वास्तव है
सब कुछ क्षय से नष्ट हो कर   शून्य के गर्भ में न-कुछ हो गया है।

कहाँ है आरती, स्तुति ?   डरावना अकेलापन !
सारे निर्माण के अन्त में   ऐसा स्तब्ध नृत्यगान।
जीवन के आखिरी छोर पर   विपुल वैभव
भंगुर गलित घाव है   पुरातत्त्व का निर्वाण है।

तथापि बाहर सूर्य है   बादल है बिजली है वर्षा है
पूर्णिमा और अमावस्या है   चंचल पवन है
बाहर हजारों मूर्तियाँ   प्राणों के रंग से सुसज्जित हैं
बाँसुरी, करताल, तूर्य   खोल और पखावज लिये।
बाहर जीवन प्रस्तर की सत्ता में   साँसें ले रहा है
कर्म की स्फूर्ति में प्राणों का   प्रत्यय माँग रहा है।

लेकिन भीतर कुछ भी नहीं है   मृत्यु भी विला गयी है।
जीर्ण-शीर्ण देहरी को   इस असूर्यम्पश्या

वेदीर निष्प्राण गर्भे स्तब्ध मनप्राण।
जीवन बाहिरे बुझि जन्म मृत्यु कर्म,
आनन्दे आघाते खुँजि जीवन स्वधर्म।

भरिया जीवन तार प्रतिछाय धीरे
मिलावे शून्येर भार कालके बाहिरे।
जानि काल केटे यावे ए शून्येर स्वाद
आवार चैतन्य पावे प्रत्यक्ष प्रसाद।

आज एइ अन्धकार मर्मे पराक्रान्त
शून्येर एमन भार शिल्पेर धिक्कार,
प्रेम नय मृत्यु नय शून्येर उद्भ्रान्त
देशव्यापी अन्धकार कार प्रतिवाद ?

वेदी के निर्जीव गर्भ में मन प्राण स्तब्ध हूँ।
लगता है जीवन बाहर है जन्म मृत्यु कर्म में
आनन्द में आघात में स्वधर्म में मैं जीवन खोजता हूँ।

इस का मृत जीवन अपनी प्रतिष्ठा से धीरे-धीरे
शून्य के बोझ को कल बाहर से मिला देगा।
जानता हूँ कल शून्य का यह गर्त कट जायेगा
फिर से चैतन्य का प्रत्यक्ष प्रसाद मिलेगा।

आज यह अन्धकार मर्म में डेरा डाले पड़ा है
शून्य का ऐसा भार ! शिल्प को धिक्कार है,
प्रेम नहीं मृत्यु नहीं शून्य का यह उद्भ्रान्त
देशव्यापी अन्धकार किस का प्रतिवाद है ?

স্বহস্তে বাজাবে

জেনো, হয়ে গেছে বহু দেরি।
ফেরার সময় বহুকাল
কেটে গেছে, সদাগরী ফেরি
ঘরে গেছে, এখন শৃগাল
মাথে তারা নেকড়ের পাল।
জেনো হল ফেরার সময়,
মাটিতে ফেরার এল কাল—
শিকড়ে শিকড় বেঁধে যাওয়া,
মজ্জায় মাটিতে তাল তাল
নির্জর সত্তাকে প্রাণদান।
কাদায় হৃদয় সঁপে ভাবো,
চৈতন্যের মাঠে খাও ধান,
লোভ ছাড়ো দূর করো ভয়।
ভাবো তুমি গ্রাম, তুমি দেশ,
গ্রাম্য মহাদেশ, লক্ষ গ্রাম।
মেনে নাও উদ্বাস্তু স্বদেশ,
বুভুক্ষু, বিবিক্ত, অক্ষয়
অমর সে কোটি মুখে কান
দাও, শোনো, বলো : ভালোবাসি।
তুমি নও ইংরেজ ফরাসী,
পাশ্চাত্যে পাবে না নামধাম।
জেনো হয়ে গেছে বহু দেরি,
মেলাও অশ্রুকে আজ মেঘে,
রৌদ্রে রৌদ্রে পুড়ে রাত জেগে
একাকার মাটিতে হাওয়ায়

अपने हाथों बजाओगे

सच जानो, बहुत देर हो गयी है।
वापसी का समय बहुत पहले
बीत चुका है, सौदागरों की फेरी
घर लौट गयी है, अब गीदड़
सोचते हैं वे भेड़ियों के दल में हैं।
सच जानो, वापसी का समय हो गया है,
मिट्टी में लौटने का क्षण आ गया—
जड़ों में लिपट कर बँध जाने का,
मिट्टी के लौंदों में हड्डियाँ बिखेर कर
अपनी सत्ता को प्राणदान देने का।
कीचड़ को हृदय सौंप कर सोचो,
चैतन्य के खेत से धान माँगो,
लोभ छोड़ो, भय को दूर भगाओ।
सोचो तुम गाँव हो, तुम देश हो,
ग्रामीण महादेश, लक्ष ग्राम।
मान लो कि स्वदेश विस्थापित है
भूखा है, खण्डित है, अक्षय
अमर इन कोटिजनों की वाणी पर
कान लगाओ, सुनो, कहो : मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।
तुम अँगरेज या फ़्रांसीसी नहीं हो,
पश्चिम में तुम्हें नाम-धाम नहीं मिलेगा।
सच जानो, बहुत देर हो गयी है,
आज आँसुओं को वर्षा में मिला दो,
धूप में झुलस कर रात-रात जाग कर
मिट्टी और हवा से एकाकार

दग्ध हये वृष्टिजले भिजे
बीजेर आवेगे कँपे निजे
पृथिवीर छय राग शोनो
माटिते जीवने प्रतिदिने ।
तवे कोनो दिन शुभक्षणे—
अवश्य करेछ बहु देरि,
विश्वके मेलाते पारो घरे
नवान्ने मतो आड़म्बरे ।
वृथा छोटो छिन्नभिन्न मने
कालेर पिछने, फेरो घरे,
योल् देवे स्वयं त्रिकाल,
स्वहस्ते बाजावे तुमि भेरी ॥

दग्ध हो कर बरसात में भीग कर
बीज के आवेग से स्वयं कांप कर
पृथिवी के छहों राग सुनते रहो
प्रतिदिन इस मिट्टी के जीवन में।
तब एक दिन किसी शुभ मुहूर्त में—
वैसे तुम ने देर तो बहुत कर दी है,
नवान्न के से समारोह में
तुम घर में विश्व का मिलन करा सकोगे।
तुम व्यर्थ ही छिन्न-भिन्न मन से
काल के पीछे दौड़ रहे हो, घर लौटो,
स्वयं त्रिकाल तुम्हें बोल देंगे
तुम अपने हाथों भेरी बजाओगे।

कथा ओठे, छोटे, डोबे अतलेर ताले ताले
तरङ्ग हिन्दोले फेनजेर मैनाकमन्द्रित स्वरे
अगाध ऊर्मिल,

तारपरे घुम, शान्ति, नीले नील,
तारपर शुधुइ हरि ओ, समुद्रेर तम्बुराय
आकाशेर रेश ॥

अतल की ताल-ताल पर तरल हिन्दोल में
फैयाजख़ाँ के मैनाक मन्थित अगाध ऊर्मिल स्वरों में
अनिर्वचनीय बात उठती हो, छूटती हो, डूबती हो,

उस के बाद नींद, शान्ति, नीलमनील,
उस के बाद बस हरि ओ३म्, समुद्र के तानपूरे पर
आकाश की झंकार ॥

आमिओ तो

आमिओ तो, शुधु चाषे नय, सारा मनेप्राणे
मेघेर कङ्गाल ।
दग्ध माटि हाहाकारे आमारओ स्नायुते आने
मुमूर्षु आकाल,
आमारओ सम्वित्ते धरे केउटेर हाजार फाटल,
सूर्येर असूयाघाते भेङेछे आमारओ आलवाल ।
देखेछि मानुष थाके चेये,
देखि माटि चेये थाके एक दृष्टि पाशुन्न आकाशे ।
कारण जीवने आजओ माटि आर सहस्राक्ष आकाश प्रबल ।
आमिओ चेयेछि अहर्निश धाराजल ।

ताइ आज दूर्वादलश्याम अभिराम वृष्टि शुनि,
वृष्टि देखि, छोटे छोटे गन्धे गन्धे भरे निइ घ्राण,
मने मने आमिओ मत्तार पोड़ा क्षेत रुइ, बुनि;
हये याइ थरोथरो कमलेर शिष ।
आमारओ स्नायुते आज माटिर आषाढ़
पाके पाके हये ओठे वर्षार उत्सव;
हृदय भासाय, नामे ढल,
मुक्ताबिन्दु गेंथे गेंथे लावण्ये चैतन्य भरि.
गलाय पराइ तारि यार बाहु आमार गलाय ।
शरीरेर अन्धकार हये ओठे मेघमय गान,
तीव्र छटा सूर्योदय-सूर्यास्तेर स्तव ।

मैं भी तो

मैं भी तो, सिर्फ आँखों से नहीं, पूरे मन-प्राण से
बादलों का भिखारी हूँ।
झुलसी हुई मिट्टी के हाहाकार से मेरे स्नायुओं में भी
मुमूर्षु अकाल भर जाता है,
मेरी चेतना में भी हजारों सर्पिल दरारें पड़ जाती हैं,
सूर्य के ईर्ष्या भरे आघात से मेरा आल-बाल भी चूर-चूर हो गया है।
मैं ने देखा है मनुष्य को टकटकी लगाये,
देखा है धरती लगातार फीके आसमान पर टकटकी लगाये रहती है।
क्योंकि जीवन में आज भी धरती और सहस्राक्ष आकाश प्रबल है।
मैं भी दिनरात जलधार को ताकता रहा हूँ।

तभी तो आज मैं दूर्वादलश्याम अभिराम वृष्टि सुन रहा हूँ,
वृष्टि देख रहा हूँ, बौछारों में गन्धों से घ्राण भर लेता हूँ,
मन ही मन मैं भी सत्ता का झुलसा खेत निराता हूँ, बोता हूँ;
फ़सल की थरथराती बाली बन जाता हूँ।
मेरे स्नायुओं की गाँठों में भी आज धरती का आषाढ़
वर्षा का उत्सव बन गया है;
हृदय बह उठा है, कगार टूट रहे हैं,
मुक्ताबिन्दु गूँथ-गूँथ कर लावण्य से चैतन्य भर लेता हूँ,
और उस के गले में पहना देता हूँ जिस के बाहु मेरे गले में हैं।
शरीर का अन्धकार बादल भरा गीत बन जाता है,
सूर्योदय और सूर्यास्त की तीव्र छटा वन्दना।

अंकुरे अंकुरे ताइ आज
आमार ओ कविता दोले प्रसन्न हाओयाय
आसन्न आश्विने आहा धानेर मञ्जरी ॥

७।२।५८

तभी तो आज अंकुर-अंकुर मे
मेरी कविता भी प्रसन्न हवा मे लहराती है
और आसन्न आश्विन में आहा ! धान की मंजरी ॥

७।२।५८

सूर्यास्त-वेलाय

गरमेर पोड़ा दिन, गिये ओ याय ना ।
जारुलेर फुले फुले शिशुदेर खेला
थामेइ ना, वलि : आहा होक ना वायना,
एखन ओ तो आमि आछि; फुल आर ढेला—
एइ तो खेलना, आर सूर्यास्तेर आलो—
आर किछु पाका चुल आमार माथाय ।
खेलुक ना, मा बाबारा निजेदेर भालो
वासुक ना निर्भावना, वाखार हाताय
आमि आछि, चेये आछि चोख-मन मेला;
ओइ दुटि शिशु देखि, गाछेर पाताय
फुले घासे एकाकार; सूर्यास्त-वेलाय
एइ बुझि मानुषेर जीवन्त आयना ?

१४।२।५८

सूर्यास्त वेला में

गरमी का झुलसा दिन, जा कर भी नहीं जाता ।
पाटल के फूलों के बीच बच्चों का खेल
थमने में ही नहीं आता, मैं कहता हूँ : धुन ही तो है,
अभी तो मैं मौजूद हूँ; फूल और ढेले—
यही तो खिलौने हैं, और सूर्यास्त का उजाला—
और कुछ पके बाल मेरे सिर के ।
खेलते हैं तो खेलें, माता-पिता स्वयं निश्चिन्त हो कर
प्यार कर लें, घर के अहाते में
मैं जो मौजूद हूँ, मन लगा कर आँखें गड़ाये देख रहा हूँ ।
देख रहा हूँ दोनों बच्चे पेड़ की पत्तियों, फूलों
और घास से मिल कर एकाकार हो गये हैं; सूर्यास्त-वेला में
शायद यही मनुष्य का जीवन्त आईना है ?

१४।२।५८

अभिन्न स्वप्निते

स्वर्णचाँपार कान्ति अङ्गे-अङ्गे आभाय,
शिरीषेर बहुमर्मरे सेइ कथाटि जानाइ,
कृष्णचूडाय प्राकृतिक मने प्रिया के राङाइ।

पलाश कि तार पापड़ि छड़ाल नदेर मूले ?
प्रवालफुलेर छोँयाच लेगेछे ओष्ठाधरे।
आरो रङ चाइ ? गाजने कि हबे शिमुलतलार आबिर धुले ?

आकाशनिमेर तारापचा मधे वृष्टि पड़े,
बाल्नार फुले फलेर बागान मदिर करे,
कदम शिहरे रथेर मेलार पथेर झड़े।

शरतेर छुटि काटाइ धानेर गन्ध मेखे,
शबुजे शुनीले दृष्टि शाराइ रासेर सुखे
गोलाप काँटाय माटिर दुःख आडुले चेखे।

से आनन्दे स्वाद नेइ विषादे या तीव्र तीक्ष्ण नय,
आनन्देर स्वादे ताइ घनीभूत अभिन्न स्वदेश।
शहरे स्वस्तिते सुखे मेने ग्राम्य शत विघ्नभय;
राजधानी कबन्ध केन ? पङ्गु दुस्थ समस्त प्रदेश।

अद्भुत जीवन देख, आमादेर कयेक पुरुष
खुँजे मरि निजवासभूमि, आछि आपन देशेइ।

अभिन्न स्वस्ति मे

स्वर्णचम्पा की कान्ति अंग-अंग मे झलकती हैं,
शिरीष के मर्मर स्वरों में यही बात बताता हूँ,
प्राकृतिक मन से प्रिया को कृष्णचूड़ा के रंग मे रँगाता हूँ।

नखमूलो मे क्या पलाश ने अपनी पंखुरियाँ बिखरा दी है ?
ओष्ठाधरो मे प्रवाल फूलो का परस लग गया है।
अभी और रंग चाहिए ? चैती मे सेमलतले का अबीर चुन कर क्या होगा ?

आकाशनीम के तारो भरी राह पर मेह पड़ रहा है,
कैथ के फूलो से फलों का बाग मतिया रहा है,
रथ के मेले की राह की आँधी से कदम्ब सिहर रहा है।

धान की गन्ध मलता मैं शरद् की छुट्टियाँ गिना रहा हूँ,
रास के आनन्द मे हरियाली और सुनील से दृष्टि आँजता हुआ,
गुलाब के काँटो मे अँगुली से धरती का दु ख चखता।

उस आनन्द मे कोई स्वाद नही जो विषाद मे तीव्र और [illegible]
तभी तो आनन्द के तले अभिन्न स्वदेश घनीभूत [illegible] है।
शहर की स्वस्ति और सुख में गाँव के सैकड़ों [illegible] रहते हैं;
राजधानी कबन्ध क्यो है ? सारा प्रदेश [illegible] और [illegible] है।

यह अद्भुत जीवन देखो, हमारे [illegible]
अपने बसने की जगह खोजते [illegible] हैं, [illegible] हम अपने ही देश मे हैं।

निर्मम निर्बोध मन, दावि शुधु चाकुरे जौलुप,
भाबि देश आमादेरइ, किछुमात्र भालो ना बेसेइ।

ग्राम आसे शहरेर भिड़े, भावे असहाय हाते
हात बेधे प्राण देबे बुद्धिमन्त इंरेजि-नविश।
ग्राम कि बोझे ना आजओ, मने प्राणे मेरे दिये आंते
उधाओ इंरेजि घोड़ा रेखे गेछे हाजार सहिस!

कबे शेष हबे बलो ग्रामदेशे एइ चड़िभाति?
प्रकृति के घर देबे साम्राज्येर असुस्थ बस्तिते,
गाँटछड़ाय बेंधे देबे निजेदेर, स्वदेश स्वजाति,
आनन्द मिलबे ग्रामशहरेर अभिन्न स्वस्तिते।

पाये माटि नेइ, वृथाइ माथाय आकाश धरा!
खनि धसे बाँध भाङे घर रेललाइन खसे—
असीम धैर्ये सर्वसहा एदेशे जनता वसुन्धरा।

लाङलफलाय चेतनाके करो उर्वर,
तबे तो फलबे ज्ञानविज्ञाने मनेर फसल,
तबे तो गड़बे यन्त्र हातेर दरदे सचल।

देरि हल? होक्। देह गम्हार, मन दृढ़,
पाता झरे गेछे, फाटबे मेटेल पापड़िर
मध्ये एकटि प्रेमेर हरित् सम्भार।

परबासी मन फिराओ गड़े गण्डग्रामे
तबे प्रकृतिर प्रतिशोध शेष हबे जेनो ठिक एइ शतकेइ,
अभिन्न मन मरा शहरेर छेये याबे आमकाँठालजामे॥

२५।२।५८

मन निर्मम और निर्दोष है, हक है तो सिर्फ़ नौकरी के जल्वे का,
तनिक सा भी प्यार किये बिना सोचते हैं कि देश हमारा ही है।

गांव शहर की भीड़ में आता है तो सोचता है असहाय हाथों को
सहारा दे कर बुद्धिमन्त अँगरेज़ी-नवीस हिम्मत बँधायेंगे।
गांव क्या आज भी नहीं समझ पाता कि तन-मन-प्राणों को कुचल कर
अँगरेज़ी घोड़ा भाग गया है, अपने पीछे हज़ारों सईस छोड़ कर!

गांव-देहात की यह पिकनिक बताओ कब खत्म होगी,
साम्राज्य की अस्वस्थ बस्ती में प्रकृति को कब जगह मिलेगी,
स्वदेश और स्वजाति के बीच गठबन्धन कब होगा,
गांव और शहर की अभिन्न स्वस्ति का आनन्द कब मिलेगा?

पैरों तले जब जमीन नहीं तो बेकार है सिर पर आसमान ढोना!
खान धँसती है, बांध टूटता है, इमारतें और रेल लाइनें खिसकती हैं—
असीम धैर्य से सब कुछ सहती है इस देश की जनता-वसुन्धरा।

हल की फाल से चेतना को उर्वर करो,
तभी तो ज्ञान-विज्ञान में मन की फसल फलेगी,
तभी तो हाथ के दर्द से सबल यन्त्र तैयार होगा।

देर हो गयी है? हो जाय। देह गम्भीर है, मन दृढ़ है,
पत्ते झर चुके हैं, चार मटियाई पंखुड़ियों के बीच
प्रेम का एक वासन्ती सम्भार है।

पराये मन को गंजो गांवों में बिला दो
सच जानो प्रकृति का प्रतिशोध इसी शताब्दी में पूरा हो जायेगा,
मरे शहर में ही आम-कटहल-जामुन के रूप में अभिन्न मन छा जायेगा॥

२५।२।५८

एरा ओ ओरा

एरा मुग्ध फाल्गुनेर महुयार ज्यामितिबाहारे;
दुर्जय विन्यासे ओठे डाले डाले पत्रहीन फुले,
येन कोनो श्रमिक वा कृपकेर देशज प्रतीक,
एकतिल मेद नेइ, शुधु पेशी, पोडा भेजा हाड़े
कठिन माटिर शक्ति ग्रन्थिते ग्रन्थिते ओठे फु'ले।

ताइ एरा मुग्ध, एरा वसन्तेर माठेर पथिक।
आर ओरा की उत्साहे फुलफल बीज तोले भरे,
समस्त कुडाय, याबे कटा मास महुयार वरे।

एमनि विभिन्न प्रतिक्रियाय देखेछि एक क्रिया
आमरा विह्वल चोखे शरतेर नवावी आकाशे
सूर्यास्ते निर्वाक मुग्ध, आर ओरा उद्वेगे अस्थिर
नवान्न सबुजे पाछे रक्तमेघ स्वर्णस्रोते भासे;
आमरा नन्दित याते ओरा ताते अन्ध वा बधिर।

अथच सवाइ एक, उभयेरइ एकटि प्रकृति,
शुधु आमादेर शिल्प मूल्यदाने गेछे मूल भुले—
महुयानिर्भर आर मेघजीवी एदेशेर स्मृति,
शुधु छिन्नग्रन्थि आज, भेद ताइ दसरे प्रान्तरे;
कृपाण-कृपाणी ओरा, आर एरा भव्य चाकुरिया॥

२६।२।५८

ये और वे

ये फाल्गुन में महुआ की ज्यामितीय बहार से मुग्ध हो जाते हैं।
अजेय विन्यास से डालों पर पत्रहीन फूल खिल उठते हैं,
मानो किसी मजूर या किसान के देशी प्रतीक हों,
तनिक भी मेद नहीं, सिर्फ़ पेशियाँ, झुलसे भीगे हाड़ों में
गाँठ-गाँठ में कठोर मिट्टी की शक्ति फूल उठी हो।

इसी लिए ये मुग्ध हो जाते हैं, वासन्ती मैदान में विचरने वाले।
और वे कितने उत्साह से फूल फल बीज कोठों में जमा करते हैं,
सब कुछ बीन लेते हैं, महुआ की कृपा से कुछ महीने कट जायेंगे।

इसी प्रकार एक ही क्रिया की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ देखी हैं
हम विह्वल दृष्टि से शरद् के नवाबी आसमान में
डूबता सूरज देख कर अवाक् मुग्ध हो जाते हैं, और वे चिन्ता से विकल
कि कहीं नवान्न की हरियाली लाल बादलों के स्वर्णप्रवाह में न बह जाये;
हम जिस बात से मगन हो जाते हैं वे उसी से अन्धे या बहरे।

फिर भी सब एक है, दोनों की एक ही प्रकृति है,
सिर्फ़ हमारा शिल्प मूल्य निश्चित करने में मूल को भूल गया है—
महुआनिर्भर और मेघजीवी इस देश की स्मृति है,
सिर्फ आज ग्रन्थि छिन्न हो गयी है, तभी तो दफ्तर और प्रान्तर में भेद हैं;
वे किसान नर-नारी हैं, और ये भव्य किरानी॥

२६।२।५८

आदिम-अन्तिम

तार पाये अशोक पलाश,
आमि वद विवर्ण शिशिर ।
तार चोखे होलिर निशिर,
आमि माघी भोरेर आकाश ।

तार गाये आदिम गौरव,
आमि वइ अन्तिम तुषार,
तार हासि अलका-सम्भार
आर आमि स्मृतिर रौरव ।

आसबे कि फेरिये आश्विन,
आमि याब फेर कि फाल्गुने ?
काल-के जितबो काल गुने,
एक रात्रि पाबे अन्य दिन ?

१२।३।५८

आदिम-अन्तिम

उस के चरणों में है अशोक पलाश,
मैं ढोता हूँ विवर्ण शिशिर।
उस की आँखों में होली की रात है,
मैं माघी भोर का आकाश हूँ।

उस की देह में आदिम गौरव है,
मैं ढोता हूँ अन्तिम तुषार,
उस की हँसी अलका का सम्भार है
और मैं स्मृति का रौरव हूँ।

क्या वह आश्विन को लाँघ कर आयेगी,
मैं क्या फिर फाल्गुन में लौट जाऊँगा?
क्या काल को गिन कर काल जीत लूँगा,
एक रात क्या दूसरा दिन पा जायेगी?

१२।३।५८

বন্য দোল

মনে হল যেন দাউ দাউ জ্বলে আগুন,
টিলায় টিলায় ছুটে গেল জোড়া বাঘ;
প্রাচীন রক্তে কিংশুকে লাল ফাগুন,
প্রকৃতির সাথ ! সুন্দরে এ কি মৃত্যুর অনুরাগ !

শালে ও সেগুনে সিমুলে ও গমুহারে
সরকারী বনে কার সাড ঝাড়ে, কারা ঝাড়ে আড়ামোড়া !
তীব্র বিধুর রূপের এ সম্ভারে
নিঠুর দরদী গোখুরা চন্দ্রবোড়া।

তবু গাছে গাছে মৃদুল ফুলের গন্ধ,
ঝোপে ঝাড়ে খুসিয়াড়ে ভ'রে যায় ঘ্রাণ,
হরেক পাখিতে খোখেকানে লাগে ধন্দ,
হরিণের ডাকে স্পষ্ট পুলকে মৃত্যুর সম্মান।

এ যেন দেশের দশের প্রাকৃত তুলনা
স্মৃতির তাড়সে আশা-আনন্দ ক্ষিপ্র,
এ যেন দেশজ প্রেমেই দশ-কে ভাবতে হয়েছে ধৃষ্য,—
সমাজেই বুঝি প্রকৃতির মৃত তুলনা ?

মনে হল রাতে পাহাড়ে পাহাড়ে নাচে আগুনের মালা,
কানে এল কত অগ্নিচক্ষু আরণ্য পদপাত,
এদিকে দূরের বসতিতে হল ফাল্গুনী মাতোয়ালা,
নাগড়াবাঁশিতে ঝাড়ে গড়ে প্রেমে পূর্ণিমা সারারাত ॥

১৯৫৮

वन की होली

ऐसा लगा मानो धू-धू कर के आग जल रही हो,
टीलों पर शेरों की जोड़ी छलांग लगाती निकली हो;
किंशुक के प्राचीन रक्त से फागुन लाल हो गया है,
प्रकृति की यह कैसी आकांक्षा ! सुन्दर को मृत्यु से यह कैसा अनुराग है !

शाल और सागौन शीशम और गम्भार के बीच
सरकारी वन में यह किन की चेतना जागती है, कौन अँगड़ाई ले रहे हैं !
चाँद के इस तीव्र रूप के सम्भार से
निष्ठुर करुण गोखुरे और चन्द्रबोड़ा साँप ।

फिर भी पेड़ों पर मृदुल फूलों की गन्ध है,
झाड़-झाड़ियों में चुपचाप घ्राण भर जाता है,
हरेक पक्षी से आँख-कानों में चकाचौंध हो जाती है,
हिरन की पुकार की प्रकट पुलक में मृत्यु का सम्मान है ।

यह मानो देश के लोगों की प्रकृत उपमा है
जो स्मृति की मार से आशा-आनन्द में भी खिन्न रहते हैं,
मानो अपने प्रेम के कारण ही वे एक-दूसरे को घृणित मानने को बाध्य हों,—
क्या सचमुच समाज में ही प्रकृति की मृत तुलना मिलती है ?

ऐसा लगा मानो रात में पहाड़ों पर अग्निमालाएँ नाच रही हों,
न जाने कितने जलती आँखों वाले पैरों की चाप सुनाई दी,
इधर दूर की उस बस्ती में फागुन मतवाला हो उठा है,
नगाड़े और बाँसुरी के स्वरों से पूर्णिमा सारी रात प्रेम में मिटाती-बनाती है ॥

१९५८

प्रथम कदम फुल

तोमाके ये देव जीवनेर सन्ध्यार
श्रावण मासेर प्रथम कदम फुल
आशा छिल नाको, तबुओ रङ्गबाहार,
तबु बैकाली आकाशे घनाल घटा।
शुनि आजकाल आमादेर बांग्लार
वर्षाइ नाकि उधाओ फेरारकार
किंवा अमनि सुदूर नामेर आड़े,
शुनि आजकाल छिड़ेछे शिवेर जटा,
शुधु मारी आर अनाहार अनाचार;
कपिलगुहार भीषण अन्धकार
आवार चेपेछे आमादेर एइ राढ़े,
गङ्गाय शुनि अनेक चोखेर लोना,
कत कोटि चोख मनेओ याय ना गोना।
ताइ नाकि आज अनेकदिनेर चेना
वर्षाइ शुनि दिल्लीते पलातक!
शिवदुर्गार मिलनइ नेइ ता घटा।

आजकाल आशा ये कोनो विषये कठिन।
आशा छिल नाको, कुण्ठित सारादिन।
तवु बैकाली आकाशे घनाल घटा,
वर्षाइ प्राय, होक कालबैशाखी,
किंवा शरत्, आकाशे रङ्गबाहार
बुझिवा उमार कैलासछाड़ा आँखि।
नामल वर्षा, कलकाता पेल मुक्ति,
छड़ाल नदीते माठे-घाटे प्रान्तरे,

पहला कदम्ब फूल

तुम्हें अपने जीवन की सन्ध्या में
श्रावण मास का पहला कदम्ब फूल दे सकूँगा
इस की कोई आशा नहीं थी, फिर भी रंग की बहार छा गयी है,
फिर भी अपराह्न के आकाश में घटा घिरी है।
सुनने में आया है कि शायद आजकल
हमारे बंगाल की वर्षा फरक्का या ऐसे ही किसी
सुदूर नाम की ओट में बिला गयी है,
सुनने में आया है कि आजकल शिवजी की जटा छिन्न हो गयी है,
बस महामारी अनाहार अनाचार ही छाये हैं;
कपिल मुनि की गुफा का अन्धकार
हमारे इस राढ देश पर फिर छा गया है,
सुनने में आया है कि गंगा में करोड़ों आँखों के आँसू हैं,
आँखें जिन की मन ही मन गिनती करना भी दुस्वार है।
तभी तो आज शायद बरसों की परिचित वर्षा
सुनने में आया है दिल्ली चली गयी है!
शिव-दुर्गा के मिलन के बिना घटा कैसी?

आज कल तो किसी भी मामले में आशा करना कठिन है।
कोई आशा नहीं थी, दिन भर कुण्ठित रहता था।
फिर भी अपराह्न के आकाश में घटा घिर आयी,
लगभग वर्षा ही की तरह, चाहे वैशाख का आँधी-तूफ़ान हो,
या शरद्, आकाश में रंगों की बहार है
मानो कैलास छोड़ कर आयी उमा के नेत्र हों।
वर्षा उतरी, कलकत्ते ने मुक्ति की साँस ली,
और घाट-मैदानों में, नदियों और वनों में फैल गयी।

एकाकार हल नवजीवनेर ऐक्य,
ग्राम शहरेर मरुशाप बुझि घुकल,
दुर्गम गिरि दुस्तर मरु पार हये प्रेमे सख्ये
नटराज बुझि नामल नीलिम युक्त
बाहुर भङ्गे गौरीर वरअङ्गे।

नेइ दृश्येर किछु नेइ समतुल।
सेइ नृत्येर विगलित सुखसङ्गे
सब वेलि जुंइ सजल हाओयाय झरे,—
मने हय बुझि धुये गेल यत भुल
शुधु उठानेर कदम स्वतइ शिहरे।
तोमाकेइ देब प्रथम कदम फुल॥

१२।७।५८

नव जीवन के ऐक्य से सब एकाकार हो गया,
गाँवों और शहरों का रेगिस्तानी आप मानो मिट गया,
दुर्गम पर्वत दुस्तर मरुस्थल लाँघ कर मानो नटराज ने प्रेम और सख्य से
नीलम-धवल बाहुपाश मे गौरी के वर अंगो को समेट लिया।

इस दृश्य की कही कोई बराबरी नही।
इस नृत्य के विगलित सुख में डूब कर
बेला और जुही के फूल सजल हवा में झर रहे हैं—
लगता है मानो सारी भूलें घुल गयी हों,
बस आँगन का कदम्ब आप ही आप सिहर रहा है।
पहला कदम्ब फूल मैं तुम्ही को दूँगा ॥

१२।७।५८

मुख तो देखि नि

मुख तो देखि नि, देखेछि केवल चला,
देखेछि पृथिवी ममताय स्मित आदरे उन्मुखर,
शुनेछि केवल पायेर दशटि पापड़िर मृदु भाषा।

मुख तो देखि नि, देखेछि मालती लता,
दोले शरीरेर आपन आवेगे; से ये प्राण-उच्छला।
आमार प्राश पियाल तले थरोथरो से कि आशा!

प्रथम यखन मुखे ताकालुम,—से दिन जातिस्मर,
मुख तो देखि नि, देखेछि आयत दृष्टि,
महा अम्बरे तारार मतन, ना से आमादेर सूर्यद्ध।

शुनेछि सौरजगतेर गान मर्त्य आमार स्वप्ने,
दुकान रेखेछि आपन हृदये, बेनेडिक्टुस सूर्य
भरेछे आमार जीवने आकाश, प्रतिटि दिनेर सृष्टि।
देखेछि से मुख, ताइ तो आजके सत्य आमार स्वप्ने॥

चेहरा तो नहीं देखा

चेहरा तो नहीं देखा, देखी थी सिर्फ़ चाल
देखी थी धरती ममता के स्मित दुलार से उन्मुखर,
सुनी थी दस पैरों की दस पंखुरियों की मृदुल भाषा।

चेहरा तो नहीं देखा, देखी थी मालती लता,
जो शरीर के आवेग से अपने आप डोलती है; प्राण-उच्छला जो ठहरी।
मेरा ज्ञानी पियाल वृक्ष किस आशा से थरथराया था।

पहली बार जब चेहरे की ओर देखा—उस दिन जन्म-जन्मान्तर याद हो आये,
चेहरा तो नहीं देखा, देखी थी आमत दृष्टि,
विराट् अम्बर में तारे की भाँति, या वह अपना सूर्य ही था।

अपने मर्त्य स्वप्न में मैं ने सौर जगत् का गीत सुना है,
अपने हृदय पर मैं ने अपने कान रख दिये हैं, मंगल सूर्य ने
मेरे जीवन में आकाश भर दिया है, प्रत्येक दिन रच दिया है।
आज वह चेहरा देखा है तभी तो आज सत्य है मेरे स्वप्न में॥

मुख तो देखि नि

मुख तो देखि नि, देखेछि केवल चर
देखेछि पृथिवी ममताय स्मित आद
शुनेछि केवल पायेर दशटि पापड़ि

मुख तो देखि नि, देखेछि मालती
दोले शरीरेर आपन आवेगे, से ये
आमार प्राण पियाल तले परोयर

प्रथम मगन मुखे ताकालुम,—गे
मुख तो देखि नि, देखेछि आयत
महा अम्बरे तारार मतन, ना दे

शुनेछि सौरजगतेर गान मर्म अ
दुखान देखेछि आपन हृदये, वेने
भरेछे आमार जीवने आकाश,
देखेछि से मुख, ताइ तो आज

भाषा

डरो मत, मन में आशा रक्खो,
प्राणों को ममता में पसार दो,
यहाँ नदी किनारे छरहरे शालवन में
तीतरों की टेर और घुग्घुओं का कूजन सुनो
बत्तखों की उड़ान और मोरों का नाच,
यहीं तुम भाषा खोज पाओगे।

अभी से डरते हो? आशा रक्खो,
मन को दिनचर्या में डुबा दो,
यहाँ नदी किनारे बुवाई हो रही है,
खेतों में धान, बागों में गुंजन,
त्योहार के दिन मैदानों और घरों में रात-रात भर नाच,
यहीं भाषा दीवार चुनती है।

डर की क्या बात है कवि? आशा जो है,
मन को सत्ता में स्थिर कर लो,
स्थिर लक्ष्य ले कर पिस्टन चलता है,
लेद के चक्करों में तरह-तरह के आयोजन गढ़ो
क्रेन की भुजाओं में देखो विश्वव्यापी नाच,
उसी देशज नाच से भाषा गूँथो।

विलासमयी कोई आशा मत रक्खो,
मन से नये बाबुओं की भाषा निकाल दो,
या फिर उस कूजन को
सन्थाली धनुष की तान की टंकारों में

भाषा

भय नेइ, मने रेखो आशा,
ममताय व्याप्त करो मन,
एखाने नदीर पाड़े तनु शालवन,
तितिरेर डाक शोनो घुघुर कूजन
हाँसेर झापट आर मयूरेर नाच,
एखानेइ खुँजे पावे भाषा।

एखनइ कि भय ? रेखो आशा,
प्रात्यहिके मग्न करो मन,
एखाने नदीर पाड़े चलेछे बुनन,
झामरे झामरे धान, बागाने गुञ्जन,
परबेर दिने गाँये माठे परे नाच,
एखानेइ मित् गड़े भाषा।

भय केन, कवि ? आछे आशा,
ममताय स्थिर करो मन,
स्थिर लक्ष्य चलेछे मिछिल,
मेलेर आसरे गड़ो नाना आयोजन
प्रेमेर धातुते गड़ा चिरस्थायी नाम,
ए देशेर गाये कोनो भाषा।

रेखो ना विभाजनी कोनो आशा,
ममताय-भाषा छाड़ो मन,
अथवा मिलाओ ए कूजन
गाँओताली-मनुषेर टाने टाने तान्-मने

भाषा

डरो मत, मन में आशा रखो,
प्राणों को ममता में पसार दो,
यहाँ नदी किनारे छरहरे शालवन में
तीतरों की टेर और घुग्घुओं का कूजन सुनो
बत्तखों की उड़ान और मोरों का नाच,
यहीं तुम भाषा खोज पाओगे।

अभी से डरते हो ? आशा रखो,
मन को दिनचर्या में डुबा दो,
यहाँ नदी किनारे बुवाई हो रही है,
खेतों में धान, बागों में गुंजन,
त्योहार के दिन मैदानों और घरों में रात-रात भर नाच,
यही भाषा दीवार चुनती है।

डर की क्या बात है कवि ? आशा जो है,
मन को सतता में स्थिर कर लो,
स्थिर लक्ष्य ले कर पिस्टन चलता है,
लेद के चक्करों में तरह-तरह के आयोजन गढ़ो
क्रेन की भुजाओं में देखो विश्वव्यापी नाच,
उसी देशज नाच से भाषा गूँथो।

विलासमयी कोई आशा मत रखो,
मन से नये बाबुओं की भाषा निकाल दो,
या फिर उस कूजन को
सन्थाली धनुष की तान की टंकारों में

डाइलेर फलाय फलाय सुतीव्र स्वनने,
सायेक नूतन छन्दे मेलाओ से नाच
ग्रामे ओ शहरे, पाबे कवितार भाषा ॥

हलों के फलों के तीव्र स्वन में मिला दो,
एक पूरे नये छन्द में मिला दो वह नाद
गाँव और शहर में, कविता की भाषा मिल जायेगी ॥

पाखिर डाक

एकटि पाखिर डाक। सेइ मुहूर्तइ
पाहाड़े पाहाडे चडे चतुर अन्तरा।
आलोतेओ येजे ओठे तारइ धरताइ,
सूर्योदये चलि सेइ सुरेर लहरा।

जानि ना कि पाखि। आंका तुषारेर पटे
फालोर एकटि बिन्दु, शुभ्र शिवालिके
येन वा तृतीय नेत्र, धवल सङ्कटे
निजे स्थिर, अग्निवेग हाने चतुर्दिके।

ध्वनिते आलोते महासङ्गीते सङ्गते
हेसे ओठे, दुले ओठे, बुझि माथा नाडे
नन्दादेवी, नील शिला, कालो कालो ढिपि
सुशिर शिशिर घास देओदार झाड़े।

अनेक पडेछि पृथिवीर स्वरलिपि,
सजल हाओयार पाडे उज्ज्वल भङ्गीते
सूर्यं सूर्य जातिस्मर सिन्धुते गङ्गाते
सम्वादी स्वरटि तार मुहूर्तेइ लिखि॥

१३।११।५८

पक्षी की टेर

किसी पक्षी की टेर। उसी पल
पहाड़ों पर वेग भरा अन्तरा चढ़ने लगा।
उजाले में भी उसी की संगत बज उठी,
सूर्योदय में चल निकला उन्हीं स्वरों का लहरा।

पता नहीं कौन सा पक्षी है। तुषार के पट पर अंकित
कालिमा का एक बिन्दु, शुभ्र शिवलिंगमूर्ति पर
मानो तीसरा नेत्र हो, धवल संकट में
अपने आप स्थिर, चारों ओर अग्निबाण छोड़ता।

ध्वनि और आलोक के महासंगीत की संगत में
मानो हँस उठे हों, डोल रहे हों, सिर हिलाते हों
नन्दादेवी, नीलशिला, काले-काले स्तूप,
शत-शत देवदारु हर्ष की बूँदें बरसा रहे हों।

बहुत पढ़ी है मैं ने पृथ्वी की स्वरलिपि,
सजल हवा के किनारे उज्ज्वल भंगिमा में
जन्म-जन्मान्तर के सूर्यों में सिन्धु में गंगा में
इस पल मैं उसी का संवादी स्वर लिखता हूँ॥

१३।११।५८

छायातप

दरजाय दाँडाय यबे
मने हय सूर्य एकराश, पिछने दु'पाशे
हिम अन्धकार घर ज्वले ओठे आलोर वैभवे ।

बागाने से घोरे फेरे
पल्लवे पल्लवे घन सबुजेर पटे घासेर सबुजे
सञ्चारिणी पल्लविनी लता—
जड़ाव ना मामुलि कथार फेरे,
उपमा प्रकाश करे शुधुमात्र प्रकाशेर दीर्घ आकुलता ।

बागाने, से शोप माघो हिमे
हीरक आभाय एका अन्यमने करे पायचारि,
एइ रौद्र एइ छाया स्पष्ट छवि आधुनिक सरले वङ्किमे

शान्त स्निग्ध घन छाया पल्लवे शाखाय,
हृदयेर छायाय से स्थिर ।
सूर्य घोरे, पृथिवीर शान्ति नेइ अणुर चाकाय,
से दाँड़िये, रौद्र आर सबुज मायाय,
एलो चुल चुम्बकेर हाजार रेखाय
स्तब्ध, छायाप्रच्छन्न गम्भीर ।

उपमाय स्थिति नेइ, रौद्रे बाजे सारङ्गेर गत्,
से दाँड़ाय स्फटिक आँचले आर इन्द्रनील असीम आकाशे
मरकते सारि सारि गाछे आर घासे ।
पिछने छड़िये देय मानुषेर स्नायुच्छन्न अस्थिर जगत,

छायातप

जब वह दरवाज़े पर खड़ी होती है
लगता है सूर्यकिरणों का पुंज हो, पीछे दोनों तरफ़
ठण्डी अँधेरी अटारी प्रकाश के वैभव से चमक उठती है।

बाग़ में वह
पत्तों के घने हरे पट पर घास की हरियाली में
संचारिणी पल्लविनी लता की भाँति घूमती फिरती है—
मैं मामूली शब्दों के फेर में नहीं पड़ूँगा,
उस की उपमा बस एक प्रकाश की दीर्घ आकुलता में ही प्रकट होती है।

बाग़ में अन्तिम माघ की ओस के बीच
हीरक आभा में वह अकेली बेसुध टहलती रहती है,
यह धूप यह छाया सीधी-तिरछी रेखाओं वाला आधुनिक चित्र बन जाती है।

पत्तों और शाखों पर शान्त-स्निग्ध घनी छाया की भाँति
हृदय की छाया में वह स्थिर है।
सूरज घूमता है, अणु के चक्कर में धरती को चैन नहीं मिलता,
वह खड़ी है, धूप और हरियाली की माया में,
चुम्बक की हजारों रेखाओं में बाल बिखेरे
स्तब्ध, गम्भीर छाया में छिपी।

उपमा में उस की स्थिति नहीं है, धूप में सारंग की गत बजती है,
वह स्फटिक ओढ़नी में असीम नीलम आकाश और
पंक्तिबद्ध पेड़ों और घास के मरकत के बीच खड़ी है।
मांस-मज्जा का मानव-जगत् वह पीछे छिटक देती है,

छायाय से फेले आसे असम्पूर्ण इतिहास कालान्तरे समस्त संवत् ।

छायाखानि चोखे पाति, आवेगेर आगुने विछाइ ।
आवार रौद्रओ धरि हेमन्त हृदये, निजेर एवं पृथिवीर,
दरजाय, सिड़िते किंवा वागाने यखन चले, किंवा ठाय सूर्यावर्ते स्थिर ॥

३०।१।५९

छायाय से फेले आसे असम्पूर्ण इतिहास कालान्तरे समस्त संवः

छायाखानि चोखे पाति, आवेगेर आगुने बिछाइ।
आवार रौद्रओ धरि हेमन्त हृदये, निजेर एवं पृथिवीर,
दरजाय, सिंड़िते किंवा बागाने यखन चले, किंवा ठाय सूर्य।

२०।११।५९

ब्लडप्रेशर

इस बीमारी का कोई इलाज नहीं, असाध्य सत्ता की व्याधि में
दवा-दारू बेकार है, सही-सही पथ्य या व्यायाम—किसी से भी
क्या कुछ भी होता है ! अनिद्रा के फन्दे में रात कटती है,
रक्त मचल-मचल उठता है, बेदम हो कर नाड़ी छूटने लगती है।
लाल आँखें नीले आकाश पर उदार प्रान्तर पर टिका दो
ऑफिस की गोपनीय फ़ाइलों में आँखों का इलाज नहीं है।
अगर खुले मैदान में पेशियों की जंजीर खोल दोगे,
अगर स्नायु नित्य निःस्वार्थ विराट् में मुक्तिस्नान करेंगे,
अगर दिगन्त तक फैली निर्मल हवा में अपने निश्वास छोड़ोगे,
तभी शरीर सुधरेगा, उच्च ताप घटेगा; इस की दवाई
वैद्यों के हाथ में नहीं है। इस रोग का नुस्खा है आकाश में,
धरती में, वनस्पति ओषधि में, खेत-मैदान-घास में,
पहाड़ में, नदी में, बाँध में, दृश्य जगत् के अनन्त प्रान्तर में,
प्रकृति में हृदय के सहज स्वस्थ स्वप्न में रूपान्तर में;
इस की चिकित्सा है लोगों की भीड़ में, गन्दी बस्ती की झोंपड़ियों की जनता में—
जनता में या धरती में, एक ही बात है, अन्योन्य सत्ता में ॥

७।३।५९

ব্লড্‌প্রেসর্

এ রোগে চিকিৎসা নেই, দুরারোগ্য সত্তার ব্যারামে
ঔষুধবিষুধ বৃথা, যথাযথ পথ্যে বা ব্যায়ামে
কিছুতে কি কিছু হয়! রাত্রি কাটে অনিদ্রার ডোরে,
রক্ত ক্ষেপে ক্ষেপে ওঠে, নাড়ী ছোটে মরিয়া বেঘোরে।
মেলে দাও রক্ত চক্ষু নীলাকাশে উদার প্রান্তরে,
বোঁকের চিকিৎসা নেই আপিসের গোপন দপ্তরে;
পেশীর শিকল যদি খুলে দাও অবারিত মাঠে,
স্নায়ু যদি মুক্তিস্নান করে নিত্য নিঃস্বার্থ বিরাটে,
নিশ্বাস বিস্তীর্ণ করো আদিগন্ত নির্মল হাওয়ায়,
তবেই শরীর সারবে, উচ্চতাপ কমবে; দাওয়াই
বৈদ্যের হাতে নেই। এ রোগের বিধান আকাশে,
পৃথিবীতে, বনস্পতি ওষধিতে, ক্ষেতমাঠ ঘাসে,
পাহাড়ে, নদীতে, বাঁধে, গোচরের অনন্ত প্রান্তরে,
প্রকৃতিতে হৃদয়ের সুস্থ স্বস্থ স্বপ্নে রূপান্তরে;
চিকিৎসা লোকের ভিড়ে, বস্তির কুঁড়ের জনতায়—
জনতা বা পৃথিবীতে, একই কথা, অন্যোন্য সত্তায়॥

৭।৩।৫৯

ब्लडप्रेशर

इस बीमारी का कोई इलाज नहीं, असाध्य सत्ता की व्याधि में
दवा-दारू बेकार है, सही-सही पथ्य या व्यायाम—किसी से भी
क्या कुछ भी होता है ! अनिद्रा के फन्दे में रात कटती है,
रक्त मचल-मचल उठता है, बेदम हो कर नाड़ी छूटने लगती है।
लाल आँखें नीले आकाश पर उदार प्रान्तर पर टिका दो
ऑफ़िस की गोपनीय फ़ाइलों में आँखों का इलाज नहीं है।
अगर खुले मैदान में भेड़ियों की जंजीर खोल दोगे,
अगर स्नायु नित्य निःस्वार्थ विराट् में मुक्तिस्नान करेंगे,
अगर दिगन्त तक फैली निर्मल हवा में अपने निश्वास छोड़ोगे,
तभी शरीर सुधरेगा, उच्च ताप घटेगा; इस की दवाई
वैद्यों के हाथ में नहीं है। इस रोग का नुस्ख़ा है आकाश में,
धरती में, वनस्पति ओषधि में, खेत-मैदान-घास में,
पहाड़ में, नदी में, बाँध में, दृश्य जगत् के अनन्त प्रान्तर में,
प्रकृति में हृदय के सहज स्वस्थ स्वप्न में रूपान्तर में;
इस की चिकित्सा है लोगों की भीड़ में, गन्दी बस्ती की झोंपड़ियों की
जनता में—
जनता में या धरती में, एक ही बात है, अन्योन्य सत्ता में॥

७।३।५९

कौणिके नय

येखाने पाहाड़ ज्यामितिर नाना साजे
हृदय भोलाय प्रकृतिर मण्टाजे,
सेइखाने ठिक पाँचटि टिलार मोड़े
चले गेल आहा पाये चला बाँका पथे ।

कोन ग्रामे गेल से कोन् टिलार पारे
सूर्यास्तेर समेर अन्धकारे ?
ओखानेओ छोटे झर्णा कि एइ तोड़े
पूर्णिमा झरे एकइ पुलकित गर्ते ?

कि हबे हृदये ज्यामितिक रूपछवि ?
देबे ना सेतारे शेपराते भैरवी ?
एइखाने ठिक पाँचटि टिलार मोड़े
फिरबे ना काल ? नाकि से फिरबे जोड़े ?

कौणिके नय, वृत्तेर परिपूर्णे
शिल्पेर शेष शान्ति—जाने कि तन्वी ?
नि.सङ्गेर विधुर गोधूलि शून्ये
बछर बछर दौड़ाब एमनि मोड़े ॥

२७।३।५९

कोणों के रूप में नहीं

जहाँ पहाड़ रेखागणित के नाना रूपों मे
प्रकृति के मोन्ताज से हृदय को मोह लेता है
वहीं ठीक उन पाँच टीलों के मोड़ पर
वह तिरछी पगडण्डी के रास्ते चली गयी।

कौन से गाँव चली गयी वह किस टीले के पार
सूर्यास्त की सम पर उतरे अन्धकार में ?
वहाँ भी क्या इसी वेग से झरना फूटता है
ऐसी ही पुलक भरी गत से पूर्णिमा झरती है ?

इस ज्यामितीय रूप-छटा से हृदय को क्या मिलेगा ?
क्या वह रात ढले सितार पर भैरवी नही बजायेगी ?
क्या वह कल यहाँ ठीक इन पाँच टीलों के मोड़ पर
वापस नही आयेगी ? या क्या वह किसी को साथ लिये लौटेगी ?

कोणों के रूप में नहीं, वृत्त की परिपूर्णता में
शिल्प की अन्तिम शान्ति होती है—क्या वह तन्वी यह जानती है ?
निःसंगता की इस विधुर गोधूलि के सूनेपन में
वर्ष पर वर्ष मैं इसी तरह मोड़ पर खड़ा रहूँगा ॥

२७।३।५९

चार स्रोत

एखनओ गरम कम, फाल्गुनेर शेष;
पल्लवे मुकुले फुले चोख भरे, घ्राण भरे;
आर पाखि, शत पाखि गान करे।

असहाय आर हिंस्र जन्तुजगतेओ जागे प्रकृतिर देशज आवेश।
चड़ा, धालि, छोट बड शादा कालो शिला
चतुर्दिके इतस्तत ज्वले वासन्तीर अनुरागे;
तार मध्ये नयनाभिराम हिम स्वच्छ स्रोत।
पाये चल पथा बाँये रेखे
डाइने बाघोया टिला फेले नेमे चलि जले जले,
स्फटिक-शीतल जले स्पर्शेर आरामे नेमे नेमे चलि अविरत।

छड़ाय नदीर बाहु समस्त शरीर,
पाहाड़े माटिर पाड़ घिरे थाके विपुल विस्तारे
अतिकाय नर्तकेर मतो।
काने आसे गभीर सङ्गीत।
चार स्रोते भाडे नदी शिलाय शिलाय,
विषादेर ध्वनि मेले आत्मदाने प्रेमेर निस्तारे,
झाँप देय प्रबल झोराय प्रपातेर वेगे चारटि धाराय;
निचे, बेश दश-बारो हाथ निचु स्तरे
तरल तन्त्रीर भिन्न चारटि परदाय
अपरूप सङ्गीते हाराय,
स्वातन्त्र्य मिलाय येन मत्सार्टेर वरदा प्रसादे,
एकटि संहति पाय मधुर तरल नाना स्वादे हरेक निखादे।

चार झरने

अभी भी गरमी कम है, फाल्गुन बीतने वाला है;
पत्तों, कलियों, फूलों से आँखें भर जाती हैं, प्राण भर आता है;
और पक्षी, सैकड़ों पक्षी गाते रहते हैं।

असहाय और हिंस्र जन्तुजगत् में भी प्रकृति का देशज आवेश जाग उठा है।
पट पर, रेत, छोटी-बड़ी काली-सफ़ेद शिलाएँ
इधर-उधर चारों ओर वासन्ती अनुराग से चमक रही हैं,
उन के बीच नयनाभिराम हिम स्वच्छ स्रोत।
पगडण्डी को बायीं तरफ कर के
बेरों वाले टीले को दायें छोड़ कर मैं पानी में चलता हुआ नीचे उतरता हूँ,
स्फटिक-शीतल जल के स्पर्श के सुख में उतरता चलता हूँ लगातार।

नदी की बाँह सारे शरीर में फैल जाती है,
अतिकाय नर्तक की भाँति
पहाड़ी मिट्टी के किनारे को अपने विपुल विस्तार में घेर लेती है।
कानों में आता है गम्भीर संगीत।
शिलाओं से टकरा कर नदी चार धारों में बँट जाती है,
आत्मदान करती हुई विवादी स्वरों की ध्वनियों को प्रेम के विस्तार में मिला देती है,
प्रबल प्रपात के वेग से झरती चार धाराओं में कूद पड़ती है;
नीचे, खासे दस-बारह हाथ नीचे स्तर पर
तरल तन्त्री के चार भिन्न परदों के
अपरूप संगीत में डूब जाती है,
मानो मोज़ार्ट के वरद प्रसाद में अपनी स्वतन्त्रता मिला देती है,
नाना गतों के निपाद-स्वरों में एक मधुर तरल संहति पा जाती है।

घुरेला झोराय ढालि निजेकेओ,
गाने स्नाने फेनिल ऊर्मिल तोड़े छेड़े दिइ,
धुये दिइ शरीर, होवाइ फाल्गुनेर दोपादोपि समस्त संवित् ॥

इस सुरीले झरने में मैं स्वयं को भी ढाल देता हूँ
फेनिल ऊर्मिल रेले में गाता-नहाता अपने आप को देता हूँ,
शरीर धो डालता हूँ, फाल्गुन के आखिरी छोर पर सारी चेतना डुबो देता हूँ ॥

अश्वत्थ

गाछेर स्तब्धता गड़ि देहे मने,
महापितृत्वेर, आकाशे रोमाञ्च मेले रागे
सहस्राक्ष ये विपुल, अटल स्तम्भना देखि तार घनाङ्गे,
मने मने गड़ि,
रौद्रेर श्यामल जय करे ये पल्लवे
लक्ष लक्ष प्राणमय सबुज पल्लवे ढाके
आपन हृदय,

कठिन संहत स्थिर स्वराट प्रान्तरे प्राणेर गठन,
अजेय उरसये कोनओ उमार सन्धाने
येन वा एसेछे देवी सतीर गिरिश।

विपुले तन्मय देहमन।

औदिके शुनेछि कारा महानिम आमजाम छातिम शिरीष
नाना फुल फलगाछ नाना शब्द गाने
झिरिझिरि नाचे
नरम हाओयाय,
सब भालो खुब भालो, मधुर मधुर, आनन्द आराम तृप्ति;
तबु अतुलन एइ वयस्क विपुल, रौद्रे स्थिर,
पृथुल प्रवीण पृथिवीर विपुल प्रणये स्तब्ध।

कखनओ वा अनेक कूजने कचि कचि लक्ष लक्ष कोमल सबुज

अश्वत्थ

वृक्ष की स्तब्धता गढ़ता हूँ अपने तन-मन में,
विशाल पीपल के वृक्ष की, इस सहस्राक्ष पीपल की
जो आकाश को रोमांचित करता रहता है, लगातार उस की अटल
स्तब्धता देखता हूँ
और मन ही मन गढ़ता हूँ,
पीपल जो अपने पल्लवों से राढ़देश की रूक्षता जीत लेता है
प्राण भरे हरे भरे लाखों पल्लवों से
अपना हृदय ढक लेता है,

पूरे मैदान में कठिन संहत स्थिर प्राणों का यह गठन,
मानो किसी अजेय उत्सव में उमा की खोज करने
यहाँ सती के गिरीश आये हों।

मेरे तन-मन पीपल में तन्मय हो गये हैं।

वहाँ न जाने किन्होंने खड़े कर दिये हैं विशाल नीम, आम, जामुन,
सप्तपर्ण, शिरीष
नाना फूलों-फलों के वृक्ष जो नाना सुरों में गाते
नरम हवा में
लहराते नाचते हैं,
सुन्दर, अतिसुन्दर, मधुर मधुर, आनन्द आराम तृप्ति;
फिर भी अतुलनीय है यह वयस्क पीपल, धूप में स्थिर,
पृथुल प्रवीणा पृथ्वी के विपुल प्रणय में स्तब्ध।

कभी-कभी किलकारियाँ भरते नन्हें-नन्हें लाखों हरे-हरे

अश्वत्थ

गाछेर स्तब्धता यदि देहे मने,
महाविस्फोरे, आकाशे रोमाञ्च मेले शाखे
ग्रहगण ये विपुल, अटल लावण्य देय तार समाधाने,
मने मने यदि,
शाखेर प्रशाखा जय करे ये पल्लवे
लक्ष लक्ष प्राणमय सवुज पल्लवे ढाके
आपन हृदय,

कठिन संहत स्थिर शाखाटा प्रान्तरे प्राणेर गठन,
अजेय उत्सवे कोनओ अमर सन्धाने
येन वा एसेछे देखो शरीर गिरिश।

विपुले तन्मय देहमन।

ओदिके तुलेछे कारा महानिम आमजाम छातिम शिरीष
नाना फुल फलगाछ नाना शब्द गाने
झिरिझिरि नाचे
नरम हाओयाय,
सब भालो सुख भालो, मधुर मधुर, आनन्द आराम तृप्ति;
तबु अतुलन एइ वयस्क विपुल, रौद्रे स्थिर,
पृथुल प्रवीण पृथिवीर विपुल प्रणये स्तब्ध।

कलनओ वा अनेक कूजने कचि कचि लक्ष लक्ष कोमल सवुज

अश्वत्थ

वृक्ष की स्तब्धता गढ़ता हूँ अपने तन-मन में,
विशाल पीपल के वृक्ष की, इस सहस्राक्ष पीपल की
जो आकाश को रोमांचित करता रहता है, लगातार उस की अटल
स्तब्धता देखता हूँ

और मन ही मन गढ़ता हूँ,
पीपल जो अपने पल्लवों से राढ़देश की रूक्षता जीत लेता है
प्राण भरे हरे भरे लाखों पल्लवों से
अपना हृदय ढक लेता है,

पूरे मैदान में कठिन संहत स्थिर प्राणों का यह गठन,
मानो किसी अजेय उत्सव में उमा की खोज करने
यहाँ सती के गिरीश आये हों।

मेरे तन-मन पीपल में तन्मय हो गये हैं।

यहाँ न जाने किन्होंने खड़े कर दिये हैं विशाल नीम, आम, जामुन,
सप्तपर्ण, शिरीष
नाना फूलों-फलों के वृक्ष जो नाना सुरों में गाते
नरम हवा में
लहराते नाचते हैं,
सुन्दर, अतिसुन्दर, मधुर मधुर, आनन्द आराम तृप्ति;
फिर भी अतुलनीय है यह वयस्क पीपल, धूप में स्थिर,
पृथुल प्रवीणा पृथ्वी के विपुल प्रणय में स्तब्ध।

कभी-कभी किलकारियाँ भरते नन्हे-नन्हें लाखों हरे-हरे

हाते हाते मृदु पाता शिहरे शिहरे दोले,
येन कोनओ आन्दोलने परगनार समस्त मातार
कोले कोले स्पष्ट आर अस्पष्ट अबुझ शिशुदेर भिड़,
कखनओ वा ईशानेर झड़े
उद्दाम उन्माद रागे हाहाकारे मारे मरे
नुये बेंके पड़े, वासा छाड़े, ताले तार ताल देय—
पाखाय पाराय,

भाङे ना, कारण तार आविश्व शिकड़ सनातने
गभीर कठिन प्राण, बड़जोर बहुदूरे पाँचिलेर भिते
उपड़िये ओठे तार दुर्मर आवेग, फाटल धराय,
भसाय देयाल, बड़जोर झराय पल्लव किछु,
किछु वा खसाय डाल,

तारपरे आबार आत्मस्थ,
आकाश ओ नीड़,
स्तब्ध स्थिर आमादेर माठे आश्चर्य अश्वत्थ गाछ ॥

१८।४।५९

हाथों के कोमल पत्ते सिहर कर डोल उठते हैं,
मानो किसी आन्दोलन में परगने की सारी माताओं की गोदियों में
प्रकट और अप्रकट अबूझ शिशुओं की भीड़ हो,
या कभी-कभी ईशान के अन्धड में
उद्दाम उन्मत्त क्रोध मे हाहाकार में मारता-मरता
झुकता है, तिरछा हो जाता है, घोंसले से निकल कर अपने पंखों से
उस की ताल पर ताल देता है,

लेकिन टूटता नही, क्योंकि उस को विश्वव्यापी जड़ों मे सदा से
गम्भीर कठिन प्राण है, बहुत हुआ तो कही दूर पर किसी चौहद्दी की
दीवार पर
उस का प्रबल आवेग टूट पड़ता है, दरार पड़ जाती है,
दीवार बैठ जाती है, बहुत हुआ तो कुछ पत्ते झर जाते हैं,
कुछ डालें खिसक जाती हैं,

लेकिन उस के बाद फिर आत्मस्थ हो जाता है,
आकाश और नीड,
हमारे मैदान में स्तब्ध स्थिर यह विचित्र अश्वत्थ वृक्ष ॥

१८।४।५९

वासावाड़ी

वासावाड़ि रुक्ष माटि। निकट गजाते लागे
बहु ग्रीष्म वर्षा बहु हिम।
भावि कोन् घर पाव कवितार भागे
कोथाय छड़ावे मन, पुब ना पश्चिम।

एखाने उत्तरे खोला, तबुओ फाल्गुने रिमझिम
मन आर हाओया दोले गन्धेर बाहारे,
टुनटुनिर मिहि गला खुले देय सुरझुरु निम,
घुघु, बुलबुलि बसे आर आसे मिछिले आहारे

बहु टिया, महासुखे निमफल खिक ओखापरे
खाय आर चुपचाप भावे,
ताछाड़ा शालिक आछे आर काक, महा आदरे
अन्य पाखि चाओ, एरा समाने चेंचावे।

वासावाड़ि रुक्षमाटि, अना बादी, मुदानेर मतो,
भोग्य घासभोग्य नय, ताओ पेते हिमशिम,
शालिक सेलामे नाना दाबिते विव्रत आपातत
उत्तरेर धरे उठि, फुले छाय निर्विकार निम॥

२४।४।५९

किराये का घर

किराये का घर रूखी जमीन की तरह है, जड़ें जमाने में
बहुतेरी गर्मियाँ, बरसातें और जाड़े लग जाते हैं।
सोच रहा हूँ कविता के हिस्से में कौन सा कमरा आयेगा,
मन को किधर बिखेरूँगा, पूरब में या पश्चिम में।

यहाँ उत्तर की तरफ़ खुला है, फिर भी फाल्गुन की रिमझिम में
मन और हवा गन्ध की बहार से डोल उठते हैं,
झरझराता नीम टुनटुन चिड़िया का महीन गला खोल देता है,
घुग्घू और बुलबुल झुण्डों मे 'दाना चुगने आते हैं'

धोते परम सुख से तोती निबौरियाँ ओठों में धर कर
खाते हैं और चुपचाप सोचते रहते है,
इन के अलावा मालिक है, कौए है, कितने ही दुलार से
और पक्षियों को देखो, ये बराबर चीखते रहेंगे।

किराये का घर है रूखी जमीन, ऊसर, भूदान की तरह,
भोगने बसने के योग्य नही, पर उसे पाने में भी झंझट,
दलाली सलामी वगैरह की माँगों से परेशान मैं फिलहाल
उत्तर के कमरे में आ जाता हूँ, निर्विकार नीम् फूलों से लदा है॥

२४।४।५९

निजस्व संवाददाता

ख़बरेर कागजेर काज।
खाद्याभाव, पूर्ववङ्गत्यागी भिड,
बाङ्लाय समस्या उग्र, ताइ चेयेछे रिपोर्ट।
घुरि तिक्तताय दग्ध पथाग्ने, छाउनि-बस्तिते
ग्रामे ग्रामे, पोड़ा माठे पोड़ा देशे
येखाने एकाले, मने हय, चिरकाल वार्षिक आकाल।
माथाय प्रचण्ड रौद्र, पाये माटि कोथाओ चौचिर
कोथाओ वा हाँटु धुलो,
जल नेइ, मानुषेर चोखे मुखे जल नेइ,
शुधु घृणा, अविश्वास, दीर्घकाल वञ्चितेर सन्देह संशय।

घोझाइ : देखते भद्र एइमात्र, किन्तु शुधु रिपोर्टार,
कलनओ निइ नि भोट, देश स्वाधीन मस्तिते
भाड़ि नि, कयेक कोटि मानुषेर दुर्भाग्य कपाले
ह्यानि नि राज्येर लोभ क्षमतार केरामते सुगे।
शुधुमात्र रिपोर्टार, भद्रलोक एइमात्र,
आसले एदेरइ मतो असहाय, पराधीन; रौद्रे पोड़ा,
हयतो पेटटा भरे, अथच हृदय इतिहासे असहाय बलि,
एकेबारे निःसम्बल, तिक्त, पोड़ा; खाँटि।
छेड़े दिइ स्थानीय बाबुर जीप मुरुब्बिर नतुन मोटर,
मफस्वली वास धरि, भाबि : येखाने येमन रीति, हाँटि।

हाँटि, एइ ग्राम थेके याइ ओइ ग्रामे
निर्जला अभाव साराटा जेलाय, सर्वत्रइ एक उपवासी ज्वाला।
एदिके गरम प्राय पश्चिमा मरुर। आजओ यदि भाबि,

विशेष संवाददाता

अखबार का बन्दा।
अन्नाभाव और पूर्वी बंगाल छोड़ कर आयी भीड़ के मारे
बंगाल की समस्या उग्र है, इसी लिए रिपोर्ट माँगी गयी है।
कटुता से दग्ध कैम्पों में, छावनी की बस्ती में,
गाँवों में, झुलसे देश के झुलसे मैदानों में घूमता हूँ
जहाँ इस वक्त, लगता है, सदा से हर साल अकाल पड़ता आया है।
सिर पर चिलचिलाती धूप, पैरों तले की जमीन में कहीं दरारें
कहीं घुटनों तक धूल,
कहीं भी पानी नहीं, इन्सान की आँखों तक में पानी नहीं,
सिर्फ घृणा, अविश्वास, जमानें से वंचित जनों का सन्देह, संशय।

मैं उन्हें समझाता हूँ : बस देखने में ही बड़ा आदमी लगता हूँ, वैसे सिर्फ रिपोर्टर हूँ,
कभी वोट नहीं माँगे, आजादी के नशे में देश के
टुकड़े नहीं किये, सत्ता के सुख और सत्ता की करामात के लिए
करोड़ों लोगों के माथे पर राज्य का लोभ नहीं फोड़ा,
सिर्फ रिपोर्टर हूँ, सफेदपोश हूँ—बस इतना ही,
असल में मैं भी उन्हीं की तरह असहाय हूँ, पराधीन हूँ, धूप का झुलसा हूँ,
शायद पेट भरा हो, पर हृदय तो इतिहास की असहाय बलि है,
एकदम निःसंबल, तिक्त, दग्ध, खरा।
स्थानीय अफसर की जीप और सेठ जी की नयी मोटर छोड़ देता हूँ,
कस्बे की बस पकड़ लेता हूँ, सोचता हूँ : जैसा देश वैसा भेस, पैदल ही सही।

पैदल ही चलता हूँ, एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचता हूँ,
'अन्न-जल के अभाव से सारे जिले में, सर्वत्र एक भूखी ज्वाला धधक रही है।
इधर गरमी है लगभग पश्चिमी रेगिस्तान की सी। आज भी जब ध्यान करता हूँ तो

ज्वाला तार गाये लागे । आमादेर आषाढ़ेओ वृष्टि कइ नामे !
आमादेर उठे गेछे वैशाखीर वैकालीर पाला ।

मने पड़े एकदिन, से ग्रामे उनुने
आगुन निवस्त, आगुन आकाशे तोला, आगुन माटितें ढाला ।
येते हवे पुवग्रामे, सदराला नइ नइ नायेब नवाब,
सुतरा सकालेइ यात्रारम्भ । से की माठ ! माइल माइल
अनेक शताब्दी ध'रे हाजार हाजार खुने
पृथिवीके छिड़े छिड़े मेरे गेछे येन,
आम-जाम-कोठाल पिपुल किछु नेइ, दीघि कुया
खालविल मजानदी किछु नेइ ।
शुधु नीरक्त श्वेताङ्ग रौद्र ।

तृष्णार आवेगे चोख फाटे । से समये, आजओ मने पड़े,
वाँये काँटा झाडार आड़ाले हठात् मन्दिर एक देखा याय
छोट, भाङा, जनहीन । से दिकेइ चलि ।
जलेर आशाय क्षुधा आर पिपासाय छायार आशाय
ना भेवेइ ऊँकि दिइ ।

मने पड़े आजओ मने पड़े सेइ सर्वसह अन्धकार,
आश्चर्य कोमल छाया मायेर चोखेर स्निग्ध अन्धकार,
चोख देह हृदय जुड़ानो आहा कालोर आराम ।
चोखेर जीवन फेरे, देखि नग्न युगल विग्रह
वेशभूषाहीन, शुधु कष्टिपाथरेर देखो राधा आर घनश्याम,
नेइ पूजार गौरव, अथच कोथाय गन्ध
आरतिर शृङ्गारेर पाथरे स्तम्भित कोथाय सौरभ ?
वेदीर पिछने देखि वेँचे आछे कालो पाथरेर धापे
हिम अन्धकारे एका कयेकटा काठ-चाँपा
मृत्युहीन गोरोचना वाहारेर गन्धेर प्रतापे ।
आर वाँदिकेर कोणे देखि सजल माटिर एकटि कलसी मुखचापा ।।

३।५।५९

उस की ज्वाला से तपने लगता हूँ। आषाढ़ में भी हमारे यहाँ वृष्टि कहाँ !
हमारे लिए तो वैशाख की सांझ की आँधी-बौछार की बारी भी चुक गयी है।

एक दिन की बात याद आती है, गाँव के चूल्हों में
आग नहीं थी, आग आसमान में चढ़ गयी थी, आग ज़मीन पर ढल रही थी।
पूरब के गाँव जाना था, मैं न सदर था न नायब सा'ब,
इसलिए तड़के ही निकल पड़ा। क्या मैदान था, मीलों तक फैला !
मानो लगातार शताब्दियों से हज़ारों हज़ार क़त्ल कर के
कोई धरती के टुकड़े-टुकड़े कर गया हो,
आम-जामुन-कटहल-पीपल कुछ भी नहीं, कुआँ-बावड़ी
नहर-पोखर नदी-नाला कुछ भी नहीं।
केवल रक्तहीन सफ़ेद धूप।

प्यास के मारे आँखें फट रही थीं। तभी, मुझे अभी तक याद है,
बायीं तरफ़ कंटीली धरती की ओट में अचानक एक मन्दिर दिखाई दिया
टूटा-फूटा, छोटा सा, जन-हीन। उधर ही चल पड़ा।
भूख-प्यास के मारे जल की आशा में छाया की आशा में
सोचे समझे बिना ही झाँकने लगा।

मन ही मन आज भी याद आता है वह सर्वसह अन्धकार,
अद्भुत कोमल छाया वाला वह माँ की आँखों का स्निग्ध अन्धकार,
तन-मन-आँखों को शीतल करने वाला वह काले रंग का सुख।
आँखों में जान लौटी, देखी वह नग्न युगल मूर्ति
वेश-भूषा से रहित, बस कसौटी के पत्थर से बने वे देखो राधा और घनश्याम,
पूजा की धूमधाम नहीं, फिर भी यह गन्ध कैसी
पत्थर में ठिठका यह आरती और शृंगार का सौरभ कैसा !
वेदी के पीछे देखा कि काले पत्थरों के ढेर के बीच ठण्डे अँधेरे में
कटहल-चम्पा के कुछ पौधे खड़े हैं, मानो
बहार की गन्ध का प्रताप लिये मृत्यु हीन रोली।
और बायीं ओर के कोने में दिखाई दी मिट्टी की एक सजल कलसी
ढँकी हुई ॥

१।५।५९

গাছ মরে

ঝড়ে নয়, জলঝড়ের অভাবে
বজ্রবৃষ্টি রুদ্ধ ব'লে
বৃক্ষ হব স্তব্ধ মহাপুরুষ স্বভাবে
মারী লাগে, মড়ক লাগায়।
জল নয় ঝড় নয়, অনাবৃষ্টি অকালের বীজে
চোরা মৃত্যুর মরশুমে শিকড়ের মর্মে মর্মে
মাটির অন্দরে ভিজে উদ্ভিদের মনে প্রাণে
শ্মশান জাগায়। কে বা কারা?
তারাই কি লোভের পসরা
নিয়ে যায় লরিতে মোটরে ট্রাকে ভারে ভারে
যে হেতু তারাই গুণ্ডুর কারবারে করাত চালায়,
মরা কাঠ চায়।
তাই কৃষ্ণচূড়া তাই জারুল গোলমোরে
অশোক বান্দরলাঠি পিয়াশাল বিজাশালে হিজলে সোদালে
শিরীষে আকাশনিমে নানা বনস্পতি মহীরুহে
স্বদেশ আত্মার মূর্তি
যেটুকু বা প্রাণের স্বাক্ষর ছিল কুৎসিত শহরে
যেটুকু বাহার, সারাপথ ছেয়ে ফুলে বা পল্লবে
বাম দক্ষিণের অভিরাম সেতু, তাতে
ঘুণ ধরে, ম'রে যায়, ঝড়ে নয়, জলে নয়
জলঝড়েরই অভাবে, বিষে ক্ষুব্ধ তাড়নায়
বাংলায় এসে পড়ে রুক্ষ মারবাড়।
মরে যায় সুপর্ণ বিপুল,
সনাতন বোধিদ্রুমে মারী লাগে সাহারার বিপুল জ্বালায়।
এদিকে রৌদ্রের চোখে ক্ষমা নেই,

पेड़ मर जाता है

आँधी से नहीं, आँधी-पानी की कमी से,
वज्र वृष्टि रुक जाने के कारण
महापुरुष के स्वभाव की भाँति स्तब्ध वृक्ष में
मारी लग जाती है, मौत फैल जाती है।
आँधी-पानी नहीं, अनावृष्टि और अकाल के बीज में
गुपचुप मृत्यु के मौसम में जड़ों की तहों में जो
मिट्टी के अन्दर गीले उद्भिद् के मन-प्राणों में
मसान जगा देते हैं, वे कौन हैं ?
वे ही न जो लोभ का सरंजाम
लौरियों में मोटरों में ट्रकों में ढो-ढो कर ले जाते हैं
क्योंकि वे ही लालच के धन्धे में आरा चलाते हैं
मरी हुई लकड़ी चाहते हैं।
तभी तो कृष्णचूड़ा, जारुल, गुलमोहर
अशोक बन्दरलण्ठी पियाशाल बीजाशाल ही जल गोंदाल
शिरीष, आकाशनीम की नाना वनस्पतियों महीरुहों में समायी
अपने देश की आत्मा की जो मूर्ति थी,
कुत्सित शहर में प्राणों के जो थोड़े-बहुत निशान थे,
जो थोड़ी-बहुत बहार थी, सड़कों के दायें-बायें फूलों-पत्तियों से
जो अभिराम सेतु छाया था, उस में घुन लग जाता है,
मौत समा जाती है, आँधी-पानी से नहीं
आँधी-पानी की कमी के ही कारण, विषम लोभ की मार से
बंगाल में रूखा मरुदेश आ धमकता है।
सुपर्ण पीपल मर जाता है,
सनातन बोधिवृक्ष में सहारा की भीषण ज्वाला की महामारी लग जाती है।
इधर धूप की आँखों में क्षमा नहीं,

छन्देर दाक्षिण्यहीन असह्य घृणाय शरीरे हृदये।
राजधानी खड़गादा आँस्ताकुड़ ग्लानिर पाहाड़,
आर गाछ रोगे मरे, चोराघाये सवुज पालाय भये,
गोपन प्रभावे गाछ मरे,
झड़े नय, वज्रे वा विद्युते नय,
विद्युतेर वज्रेर अभावे॥

१८।५।५९

रुद्र के तन-मन में समायी कृपा-हीन असह्य घृणा के मारे
राजधानी घास-फूस का घूरा, ग्लानि का पहाड़ बन गयी है,
और पेड़ रोग से मर जाता है, छुपे घाव के मारे हरियाली डर कर भाग जाती है,

गुप्त प्रभावों से पेड मर जाता है,
आंधी से नहीं, वज्र या विद्युत् से नहीं
विद्युत् और वज्र के अभाव से ॥

१८।५।५९

एकटि वैठकी नाटक

मने आछे, सेवारे बेडाते याओया सुवर्णरेखाय ?
पाहे खुब तोड़जोड़, खिचुड़िर चड़िभाति चड़े,
आर आमरा कयेकजन जले जले ऐंके बैंके चलि :
स्नान गान हैं-हैं, हयतो वा कारो कारो प्रेमालाप
अन्तत चुपि चुपि निचु गला किछु बलावलि।
तोमादेरओ मने पडे ?
हठात् बाँकेर शेष आर आचम्बित अभिशाप
बालि आर जले ?

आजओ मने पड़े सेइ चोराबालि येके फोन मते
विशाखा अनुप आर सुरेशके टेने टेने तोला !
एदिके तारा डोबे, जल बाडे, भयओ घनाय स्रोते,
नदीर भूगोले पृथिवीर दीर्घ इतिहासे दृष्टिर अतीत रसातले,
यावे कि अतले तिनजन ?

काल साइ हल। आहाटा जमेछे दिब्यि, कथा हासि
चालाचालि, गोल्दोघिर पोलो येन,
हठात् कि चोराबालि डाक दिल्े, समस्त हाओयाटा
रागेर ओ घृणार विद्युते हल भारि,
अनुपेर मने हल सुरेशेर मुखे सभा भिक्षा चाओयाटाइ
भीषण जर्ह्वरि, ताइ समये चेंचाल, किंवा गल्दा चेपे
छटाल दु' जने, अन्तत अनुप, दलेपेर पिनकारि;

एकजन येनि बुझि, अन्यजन कम, बालि पाँक जले

बैठक में एक नाटक

याद है, उस बार जब सुवर्ण रेखा पर सैर करने गये थे ?
किनारे पर खूब हलचल थी रेतिया पर खिचड़ी की पिकनिक,
और हम कई जने पानी में आड़े-तिरछे चल रहे थे :
स्नान-गान, हो-हल्ला, या शायद किसी-किसी का प्रेमालाप भी,
कम से कम दबी आवाज में गुपचुप कुछ बातचीत।
तुम लोगों को भी याद है ?
अचानक मोड़ के छोर पर पानी और रेत का
वह चौंक-भरा अभिशाप ?

आज भी याद पड़ता है धँसती रेत से किसी तरह
विशाखा, अनूप और सुरेश को खींच-खाँच कर बाहर निकालना !
इधर वे तो डूब रहे थे, उधर पानी बढ़ रहा था, और डर भी बढ़ता जाता था कि इस रेले में
नदी के भूगोल में, पृथ्वी के दीर्घ इतिहास में, दृष्टि के परे रसातल में
तीनों के तीनों अतल में तो न समा जायेंगे ?

कल वही हुआ। खूब जोरदार बैठक जमी थी, बातचीत हँसी-मजाक,
सवाल-जवाब, मानो गोल सरोवर के जल में पोलो का खेल हो कि
अचानक न जाने किस धँसती रेत ने गुहारा कि सारा वातावरण
क्रोध और घृणा की विद्युत् से बैठ गया,
अनूप को लगने लगा कि सुरेश की जुबान से क्षमा-याचना कराना
निहायत जरूरी है, इसी लिए दोनों चिल्लाये, और दोनों,
कम से कम अनूप तो जरूर, दलेप की पिचकारियाँ छोड़ने लगे;

और दोनों ने एक दूसरे को रेत-कीचड़-पानी भरे रसातल में

রসাতলে ডাক দিলে। উভয়েই ডোবে জাহাজটি
এর হাতে ওর পায়ে।
অথচ ব্যাপার কিছু নয় আহার সুখের মুখে কথা
কিছু মিঠা কিছু খাট্টা।
সুবর্ণরেখায় চলা ছুটির মেজাজে সব
চলি বসি ভিজি হাসি আর উঠি-পড়ি,
হঠাৎ থমক হেনে চোরাবালি টেনে ধরি মৃত্যুর অতলে।

জানি না কি দীর্ঘ ইতিহাস ছিল ভালোর মন্দের
অপচ্ছন্দ পছন্দের অবান্তর অচেতন
সুরেতের অথবা—এবং অনুপের বালি জলস্রোতে,
হঠাৎ আছাড়া হয়ে গেল ঘৃণায় চৌচির,
ঘূর্ণাবর্তে রসাতলে যেন প্রায় বৈপ্লবিক,
আলজীর বা মাউমাউ, কেনিয়াট্টা কিংবা যেন নাগা!

সহজে কি বোঝা যায় ব্যক্তিতে ব্যক্তিতে যেন ঠিক
ভালোবাসা জমে গলাগলি ঢলাঢলি, যেন ঘৃণা জ্বলে
কেন দপ্‌ক'রে রাগারাগি, কেন কোন্‌ জীবনবিকারে প্রতিশোধে
আত্মসচেতনতায় হ'য়ে ওঠে বেকুব বেল্লিক॥

মে, '৫৯

हाँक लगायी, एक ने शायद कम, दूसरे ने ज्यादा ।
एक दूसरे के हाथ-पैर पकड़ कर दोनों डूबने लग गये ।
हालांकि बात कुछ खास न थी, बस बैठक की लच्छेदार बातचीत—
कुछ मीठी कुछ खट्टी ।
सुवर्ण रेखा की सैर, छुट्टियों के मूड में वह सब का
चलना, बैठना, भीगना, हँसना और उठना लेटना—
कि अचानक धँसती रेत का चौका कर मृत्यु के अतल में घसीट ले जाना ।

क्या पता रेत और पानी के उस प्रवाह में सुरेश का या—
और अनूप का कैसा दीर्घ इतिहास था भलाई-बुराई,
पसन्द-नापसन्दगी का, परोक्ष और अचेतन, कि
अचानक बैठक घृणा से चौचीर हो गयी,
भँवर के चक्कर में रसातल में जाते वे मानो विप्लवी हों
अल्जीरियाई या माउमाउ, केनियाट्टा या नागा !

क्या यह समझना आसान है कि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच
कैसे फौरन प्यार हो जाता है घनिष्ठ और विह्वल, कैसे घृणा लहक उठती है,
कैसे चट से क्रोध भड़क उठता है, कैसे किस जीवन विकार प्रतिशोध को
आत्म सचेतनता ही बेवकूफी और असभ्यता बन जाती है ।।

मई, '५९

वर्षार नदी

के चले ए सेइ नदी । चडिभाति करेछि सकले,
पाहाड़े घालिते जले की आनन्द, कोलाहल, स्नान,
एइ तो क' मास आगे—किछुटा वा साहेबी नकले
सकले करेछि लाओोया-दाओया, गीतवितानेर गान ।

हेमन्ती हरिण नदी आजके से मरिया महिष
प्रचण्ड वन्याय वन्य, नेमे आसे माथाभाङा तोड़े ।
एदिके बेंधे छे ग्राम्य पाँचटा कि छ'टा बाँशे साँको,
पाये पाये मृत्युभय । ओदिकेर बाँके चले खेया,

निरुपाय लागे, चोख क्षिप्रश्रोते यदिकेइ राखो,
डिङि छोटे लाल स्रोते, चोखे बुझि समस्त बकेया !
छुटिर से मरा नदी वर्षा आज, माते शत कृपाण् मुनिष,
किंवा मजुरेरा येन दले दले कारखानार मोड़े ॥

१७।६।५९

वर्षा की नदी

कौन कहता है यह वही नदी है। अभी कुछ ही महीनों पहले
सब ने मिल कर पिकनिक की थी, पहाड़-रेत-पानी में स्नान,
कोलाहल, आनन्द का वह समाँ ! कुछ-कुछ साहबी नक़ल में
सब ने मिल कर खान-पान किया था, 'गीतवितान' के गीत गाये थे।

हेमन्त की वह हिरना नदी आज उत्तेजित भैंस है
प्रचण्ड वन्या से वन्य, सिरफोड़ वेग से छूटी आ रही है।
इधर पाँच या छह बाँसों का गँवारू पुल बँधा है,
क़दम-क़दम पर मृत्युभय। उधर के मोड़ पर नाव चल रही है,

बड़ी बेबसी लगती है, आँखें तेज धार में जिधर भी घुमाओ,
लाल धारा में डोंगी छूटती है, शायद सारा बकाया चुक गया ?
छुट्टियों की वह सूखी नदी आज वर्षा बन गयी है, मानो सैकड़ों किसान और
खेत मजूर उन्मत्त हो उठे हों या कारखाने के मोड़ पर मज़दूरों की टोलियाँ ॥

१७।६।५९

अन्धकारेर क्षतिओ ताके

स्वर्णलतार झोपे ज्वले याक जोनाकि पोका,
रजनीगन्धा दाँड़िये थाकुक कयेक थोका,
पाहाड़ेर आड़े पालियेछे बुझि, पालालइ वा,
विभावरी ताके दिये दाओ याके दियेछ दिवा।
अन्धकारेर आभाय से बुझि आँचल पेते
गोलापी पथेर बाँके बाँके आर सबुज क्षेते
पालियेछे ऐ येखाने नीरव सन्ध्यातारा,
भावे धरे गिये काटावे रात्रि तन्द्राहारा।
ताहले एबारे क्षान्ति मानो हे, क्षान्ति मानो,
ग्रामेर कोथाओ आश्रय चाओ, घुमेर दानो
माटिर दाओयाय नामाओ एवं रात्रिटाके
बिलियेइ दाओ पाहाड़-पारानि पलातकाके।
दिन थाके दिले कयेक क्रोशेर पाहिर पाके
पाशापाशि दिओ अन्धकारेर क्षतिओ ताके॥

२५।६।५९

अन्धकार का आघात भी उसी को दे दो

स्वर्णलता के झाड़ में पटबीजने चमकते रहें,
रजनीगन्धा के झुण्ड खड़े हैं तो खड़े रहें,
लगता है वह पहाड़ की ओट में चली गयी है, तो जाय,
विभावरी भी उसी को दे दो जिसे दिन दिया है।
लगता है वह अन्धकार की आभा में आँचल सरकाती
गुलाबी रास्ते के मोड़ों और हरे खेतों के पार
वहाँ दूर चली गयी है जहाँ नीरव सन्ध्यातारा दीखता है,
सोचती होगी घर जा कर तन्द्राहर रात बितायेगी।
तो फिर अब तुम शान्त हो जाओ, भई, शान्त हो जाओ
गाँव में कहीं बसेरा खोजो, नींद के दैत्य को
कच्चे ओसारे में उतार दो और इस रात को
पर्वत-पारीण पलातका को ही सौंप दो।
कोसों की मंजिल के चक्कर में जिसे दिन दे बैठे हो
अन्धकार का यह आघात भी तुम उसी को दे दो॥

२५।६।५९

मध्यिखाने चर

मध्यिखाने चर ।
एदिके शिशुरा मेले बालकेरा माते,
अन्यदिके जीर्णप्राय खाते
वृद्धदेर गङ्गास्नान ।
मध्यिखाने दुस्तर बहर ।
एदिके सरल प्राण कलकण्ठ गान,
निर्भीक ओ निःसंशय मर्त्ये येन अमरार पेयेछे सन्धान ।

मध्यिखाने चर ।
ओदिके मृत्युर भाते मरीया जरार
विपन्न भङ्गुर स्वार्थे घृणाजीवी पण्यलोभी सन्त्रासेर स्नान,
किछुते माने ना निज अन्तिम प्रहर
कर्दमाक्त पुण्ये गाय फिरबे बछर ।

वृद्धेरा निर्लज्ज हले मानुषेर बड़ असम्मान,
लज्जाय शुकाय नदी,
चड़ार दुपारे पचे याय ग्राम ओ शहर ॥

६।७।५९

बीच में टापू

बीच में टापू है ।
इधर शिशु खेलते हैं, बालक धुन में रमे हैं,
उधर दूसरी ओर जीर्णप्राय घाट में
वृद्धजनों का गंगास्नान हो रहा है ।
बीच में दुर्गम सर्प है ।
इधर सरल प्राण कलकण्ठों का गान है
निर्भीक और निःसंशय मानो मर्त्यलोक मे अमरता का पता पा लिया हो ।

बीच में टापू है ।
उधर मृत्यु के घाट पर हताश बुढ़ापे का
क्षणभंगुर स्वार्थ मे डूबे घृणाजीवी पण्यलोभी सन्त्रास का स्नान है जो
किसी भी तरह मानने को तैयार नहीं कि यह आखिरी घड़ी है
कीचड़-सने पुण्य से सोचता है दिन लौट आयेंगे ।

वृद्धजनों की निर्लज्जता मनुष्य का भारी अपमान है,
लज्जा से नदी सूख जाती है,
टापू के दोनों ओर के गाँव और शहर सड़ जाते हैं ।।

१।७।५९

পার্কে

পেনসন ফুরোয় পাছে, পার্কে তাই, দীর্ঘজীবী, হাঁটি নিয়মিত,
অল্পস্বল্প গল্প হয়, কেউ ভক্ত ঈশ্বরের কেউ ইংরেজের,
কংগ্রেসী শাসনে প্রায় সবাই হতাশ, আর লাল পীত
ত্রাণবীনে সন্ত্রস্ত উৎসাহ, তিব্বতও শুনেছি পার্কে
ছিল ইংরেজের, এখন কারোই নয়, পঞ্চভূতের, অথবা খাস ভারতের।
মাঝে মাঝে এই সব শুনি ব'সে, তবে হাঁটা-টাই বেশি
লাঠিতে বাগিয়ে মুঠি, নিশ্বাসপ্রশ্বাস চলে টারমাক মেজের
পিঠে বাটার রবারপায়া দ্রুতপদ ফেলে, যদি পাকস্থলীটার পেশী
বার্ধক্য-বিজয়ী হয়—ইংরেজের মতো চিরকাল,—কেউ স্ফীত, কেউ রোগা
কেউবা উপোসী নীল পিকাসোর ইঁদুরের মতো, কেউবা বর্তুল
যেন এঁকেছে লেজের, আপিসে অর্জিত মেদ কিংবা আড়তের,
কপালে শর্করা রোগ কারো কফপিত্তে কারো রক্তচাপে ভোগা।

ছেলেদের খেলা দেখি, জীবনের সব লক্ষ্যভেদ যেন তারা
এক ক্ষিপ্র লক্ষ্যে বাঁধে; বেশ লাগে দলবদ্ধ কিশোর আগ্রহ,
একটু বা ভয়ে দেখি, কেননা হঠাৎ বল মাঝে মাঝে ছোটে দিশাহারা,
গায়ে লাগে, এঁকে দেয় পেনসনের শার্টে কোটে পঙ্কের ভূষণ।
তার চেয়ে ঢের বেশি প্রতিদিন চোখ যায় এদিকের ঘাসে
যেখানে শিশুর মেলা, কেউ কোলে, কেউ হাঁটি-হাঁটি ক'রে হাসে,
কেউবা গাড়িতে বাঁধা, প্রচ্ছন্নগম্ভীর, অসহায়, সর্বংসহ

पार्क में

कहीं पेन्शन खत्म न हो जाये इसी लिए दीर्घजीवी मैं पार्क में नियम से
टहलता हूँ,
थोड़ी-बहुत बातें होती हैं, कोई ईश्वर का भक्त है तो कोई अँगरेजों का,
कांग्रेसी शासन से प्रायः सभी हताश हैं, और लाल-पीत रूस-चीन के प्रति
सन्त्रस्त उत्साह, तिब्बत भी पार्क में सुना है अँगरेजों का ही था,
अब किसी का नहीं है, या तो पंचभूतों का है या खास भारत का।
बैठा-बैठा यही सब सुनता रहता हूँ, फिर भी टहलना ही मुख्य है
मुट्ठी में छड़ी थामे, बाटा के रबड़ के जूते पहने सीमेण्ट के फ़र्श पर
तेज क़दम रखने से साँस तेज हो जाती है, शायद आमाशय की पेशियाँ
बुढ़ापे पर विजय पा लें—अँगरेज़ों की तरह कुछ समय के लिए—, कोई
फूला, कोई मरियल
और कोई पिकासो के नीले यहूदी की तरह भुखमरा, कोई दुम की तरह
गोलाई आँकता, दफ़्तर में कमाई हुई चर्बी या आढ़त की,
किसी की तकदीर में मधुमेह है, कोई कफ-पित्त भोग रहा है कोई रक्तचाप।

लड़कों का खेल देखता रहता हूँ जीवन के सारे लक्ष्यभेद मानो उन्होंने
एक क्षिप्र लक्ष्य में बाँध लिये हों, अच्छा लगता है यह दलबद्ध किशोर आग्रह,
कुछ-कुछ डर भी लगता है क्योंकि अचानक बीच-बीच में गेंद ग़लत दिशा
में छूट पड़ती है,
और शरीर से लग कर पेन्शन वाली शर्ट-कोट पर कीचड़ का शृंगार आँक
देती है।
उस से कहीं ज़्यादा नज़र रोज इधर की घास पर जाती है
जहाँ बच्चों का मेला रहता है, कोई गोद में, कोई पाँव-पाँव चलता हँसता हुआ,
और कोई गाड़ी में बँधा, प्रच्छन्न गम्भीर, असहाय, सर्वसह,

सवाइ प्रजाय स्वच्छ, येन भारतेर जीर्ण दीर्घ इतिहासे
एराइ एकाल थेके सेकालेर मोगलपाठान मौर्य वा कुशान
बहु मृत्यु देखे देखे चले याय अनाहत खेलार प्रत्यये
भविष्यते, या एदेर वर्तमान, एरा यार पुष्टि ओ पूषण।
एइ सब फुल-फुल शिशुदेर प्रतिदिन प्रत्येक हृदये
सर्वदाइ जन्मदिन, पृथिवीर मानुषेर प्रत्येकटि मन
रूपान्तर पाय एइ जन्मे, मृत्यु हय पूर्णतार पाका फल
स्वाभाविक, नियमित, निष्कलङ्क मृन्मये चिन्मये॥

२०।७।५९

सब के सब प्रज्ञा से स्वच्छ, मानो भारत के दीर्घ-जर्जर इतिहास के
मुग़ल-पठान, मौर्य या कुषाणों के काल से ले कर अब तक ये ही
बार-बार मृत्यु देखते-देखते अनाहत खेल के प्रत्यय से भविष्य की ओर
जा रहे हों, जो इन का वर्तमान है, ये जिस की पुष्टि है, पोषण है।
इन फूल जैसे शिशुओं का प्रतिदिन प्रत्येक हृदय में सर्वदा
जन्मदिन होता है, धरती के जनों में से प्रत्येक के मन को
इस जन्म में रूपान्तर मिलता है, मृत्यु पूर्णता का पका फल बन जाती है
इस स्वाभाविक, नियमित, निष्कलंक, मृण्मय चिन्मयता में ॥

२०।७।५९

नान्नुरे

जादुघरे पग्पिदे तर्क चले छातना वा नान्नुरे
कोथाय चण्डीर पीठ वा कोन चण्डीदास !
विश्वविद्यावैद्य हय थीसिसेर केतावे खेतावे—
आपादेर सन्ध्या मेघे वैशाखेर आकाले दुपुरे,
पदावली कॅदे मरे, राधा भोले आपन कान्हुरे,
प्रेम भये देश छाड़े, भुले याय प्रेमेर तियाप ।

देखेछि महलाइ—पारे दीघि, सेइ धोवानि पाथर,
तामार आँधार हाते विशालाक्षी ताकिये भास्वर,
छायाङ्गी नायिका नाचे कीर्तनेर विधुर रेखाबे,
स्पष्ट शुनि गान मेघे मृदङ्गेर नक्षत्र आखर ।
एदिके काँपन लागे पापड़िर आङुले सुरे सुरे,
प्रेमेर फाँसिते लु'ले फुल फोटे विशाल वाओवारे ॥

१०।८।५९

नान्नुर में

अजायबघरों और परिषदों में बहस होती है कि चण्डीपीठ
कहाँ है, छातना में या नान्नुर में, चण्डीदास कौन थे !
थीसिसों की पोथियों और डिग्रियों से विश्वविद्यावेद्य बन जाते हैं—
आषाढ़ की सन्ध्या वैशाख की अकाल दोपहर में मिल जाती है,
पदावली रो-रो कर दम तोड़ देती है, राधा अपने कान्हा को भूल जाती है,
प्रेम डर कर देश से भाग जाता है, प्रेम की तृष्णा भूल जाता है ।

मैं ने देखी है कछार के पार की वह बावड़ी, वह धोबिन का पाट,
ताम्र अँधेरे के हाथों वाली विशालाक्षी की दीप्त टकटकी,
कीर्तन के विधुर ऋषभ पर छायांगी नायिका नाचती है,
मेघ-मृदंग के नक्षत्र अक्षरों में वह गीत मुझे स्पष्ट सुनाई देता है ।
इधर गीत के सुरों से पंखुड़ियों की उँगलियाँ काँप उठती हैं,
प्रेम के बन्धन खोल कर सुगन्धित वायु में विशाल फूल खिल उठता है ।।

१०।८।५९

সে ও এরা

রাত্রে তার জন্মলগ্ন
অন্ধকারে সে স্থির নির্ভয়।
পশুর ও মানুষের মর্ত্যলোকে প্রাথমিক তার যে উদ্বেগ,
সহ সেই নিষ্ঠুর বিষাদ, সেই মৌল নিঃসঙ্গের ত্রাস
এতই প্রবল ছিল তার, যে এখন কোনো
দীপিত সংশয়ী ভেক,
আগ্‌দানি হঠাৎ-নবাব কোনোই বায়না
নব্যভব্য স্বার্থজাত তথাকথিত মনন-ব্যবসায়ী কোনো প্রতিবাদ
আবশ্যিক মৃত্যুর বা ধ্বংসের উল্লেখ
তাকে আর কাঁদায় না হাসায় না,
বড়জোর হয়তো সে বলে : ধিক্ ধিক্।
অর্বাচীন বামসেরা গ্রাম্যতার ময়ূর ডম্বরে
সরল বাহুল্যে মাত্র ব্যর্থতায় তাকে ক্লান্ত করে।

রাত্রে তার জন্মলগ্ন।
মাতৃসম অন্ধকারে তাই সে নির্ভীক
জন্মমৃত্যু সেতুবন্ধে এসেছে তাই সে নিশ্চিত।
নূতন জন্মের নীল প্রচণ্ড বিষাদে
তার হয়েছিল কিনা চৈতন্যের উজ্জীবন
জীবজগতের আর মানবিক সবচেয়ে মৌলিক বিপ্লবে,
তাই রূপান্তরে জীবনে বিপ্লবে নিঃসংশয় সে,
বিষাদউত্তীর্ণ তার আশা,
অন্ধকারে লক্ষ-লক্ষ নক্ষত্র-উৎসবে
অটল আশ্বাসে তার মননের স্ফটিক সঞ্চিত।
তার মন বা তার জীবন অনেক দ্বান্দ্বিক মৃত্যু পার হয়ে

वह और ये

उस का जनम रात के वक्त हुआ था
अँधेरे मे वह स्थिर और निडर रहता है ।
पशुओं और मानवों के मर्त्यलोक मे उस का वह प्राथमिक उद्वेग,
शिशु का वह सद्य विपाद, निःसंगता का वह मौलिक त्रास
उस के मन में इतना प्रबल था कि अब कोई भी
शौकिया संशयी भेष,
आशु-नवादों की कोई भी इम्पोर्टेड धुन
नव्य-भव्य स्वार्थो से उत्पन्न तथाकथित बुद्धिजीवियों का कोई भी प्रतिवाद
अनिवार्य मृत्यु या ध्वंस के उल्लेख
न उसे रुलाते हैं न हँसाते हैं,
बहुत हुआ तो शायद वह कह उठे . धत्तेरे की ।
आधुनिक कौए गँवारूपन के मयूरी घटाटोप से
अपनी व्यर्थता के सरल बाहुल्य के कारण उसे उबाने लगते हैं ।

उस का जन्म रात के वक़्त हुआ था ।
माता के समान अन्धेरे में इसी लिए वह निडर है
जन्म-मृत्यु के सेतुबन्ध पर उस का आगमन हुआ है इसी लिए वह स्थिर है ।
नये जन्म के प्रचण्ड नील विपाद में
जीव-जगत् और मानवता के सब से बड़े मौलिक विप्लव में
उस के चैतन्य का उज्जीवन हुआ था न
इसी लिए वह रूपान्तर मे जीवन मे विप्लव में निःसंशय रहता है,
उस की आशा विपाद से परे है,
अँधेरे में लाखों सितारों के उत्सव मे
उस के मनन का लूनिक अटल आश्वास मे जगमगाता है ।
उस का मन और उस का जीवन अनेक द्वन्द्वपूर्ण मृत्यु को पार कर के

बहु पापपुण्य बहु स्वार्थ आशा हताशार परे
करेछे जटिल यात्रा।
ताइ तार वैदग्ध्येर भाषा, द्वन्द्वोत्तीर्ण तार मात्रा
नव्य भव्य ग्राम्य एरा बोझेइ ना—
एरा ये अजात-मृत आजओ।
अखाद्य विलासे मरे प्राणेर मराइ
जन्ममृत्यु निये केन एदेर बड़ाइ!
एदेर गन्तव्य-अन्ते तार यात्रा शुरु
जन्मेर मृत्युर दीर्घ रूपान्तरे
आदि अन्धकार थेके
से ये ऊषाउपसीके डेके दिनरात्रि उत्तरणे बछरे बछरे
आदिम धैर्येर प्राज्ञ आलोके बेंधेछे
तार बासा॥

१५।८।५९

नाना पापपुण्य नाना स्वार्थ आशा-हताशाओं की राह पर
जटिल यात्रा करता रहा है।
इसी लिए उस के वैदग्ध्य की भाषा, उस की द्वन्द्वोत्तीर्ण यात्रा
ये नव्य-भव्य गँवार समझ ही नहीं पाते—
ये जो आज भी अजात—मृत हैं।
इन के प्राणों की सस्ती अखाद्य विलास से भरी हैं
जन्म-मृत्यु के विषय में इन की क्या बड़ाई है!
इन की मंजिल जहाँ खत्म होती है वहीं से उस की यात्रा शुरू होती है
जन्म और मृत्यु के दीर्घ रूपान्तर में
आदि अन्धकार से
ऊषा सन्ध्या को टेरता दिनरात के पार वर्ष पर वर्ष
आदिम धैर्य के प्राज्ञ आलोक में
उस ने अपना घर बनाया है॥

१५।८।५९

দামিনী

সেদিন সমুদ্র ফু'লে ফু'লে হল উন্মুখর মাঘী পূর্ণিমায়
সেদিন দামিনী বুঝি বলেছিল :—মিটিল না সাধ।
পুনর্জন্ম চেয়েছিল জীবনের পূর্ণচন্দ্রে মৃত্যুর সীমায়,
প্রেমের সমুদ্রে ফের খুঁজেছিল পূর্ণিমার নীলিমা অগাধ,
সেদিন দামিনী, সমুদ্রের তীরে।

আমার জীবনে তুমি প্রায় বুঝি প্রত্যহই ঝুলন-পূর্ণিমা,
মাঘী বা ফাল্গুনী কিংবা বৈশাখী রাস বা কোজাগরী,
এমন কি অমাবস্যা নিরাকার তোমারই প্রতিমা।

আমারও মেটে না সাধ, তোমার সমুদ্রে যেন মরি
বেঁচে মরি দীর্ঘ বহু আন্দোলিত দিবস-যামিনী,
দামিনী, সমুদ্রে দীপ্ত তোমার শরীরে॥

दामिनी

उस दिन समुद्र उमड़-उमड़ कर माघी पूर्णिमा में उन्मुखर हो गया था
उस दिन शायद दामिनी ने कहा था : साध पूरी नहीं हुई।
उस दिन दामिनी ने मृत्यु की सीमा पर जीवन के पूर्णचन्द्र में
पुनर्जन्म मांगा था, प्रेम के समुद्र में दुबारा पूर्णिमा की अगाध नीलिमा
खोजी थी, समुद्र के किनारे।

मेरे जीवन में तुम नित्य ही प्रायः झूलन-पूर्णिमा, माघी या फाल्गुनी
या वैशाखी रास या कोजागरी जैसी लगती हो।
यहाँ तक कि अमावस्या भी तुम्हारी ही निराकार प्रतिमा होती है।

मेरी साध भी पूरी नहीं होती, मैं भी मानो तुम्हारे समुद्र में
जीता-मरता हूँ, इन आन्दोलित दीर्घ दिन-रातों में,
दामिनी, तुम्हारे दीप्त शरीर के समुद्र में॥

প্রবীণ সারস

যেখানে পাহাড় বেঁকে নেমে গেছে নদীর বালিতে
সেইখানে, হঠাৎ স্তব্ধতা মেঙে দেখা হল,
একা, নিষ্পলক বাকালুম, চেনাঅচেনায় মেশা,
বনের চালুতে হঠাৎ সামনে দেখা,
মুখে কথা নেই, মাবা-না-মাবায়
নিস্তব্ধতা কুলকুলু করে,

কথা কি সে বলেছিল ?
বলেছিল : প্রিয়তম, চিত্ত মম জীবনমৃত্যুর
প্রতি মুহূর্তের সূতে গেঁথেছিল পরানবঁধুর
যে বাহুবন্ধন, তাই দিয়ে যাই তোমার বিস্ময়ে,
মোরে তুমি বেঁধে নাও নীরব নির্জন বরাভয়ে।
নাকি সে বলেনি কিছু ?
আমারই হৃদয় মগ্নতায় মাথা নীচু ক'রে
হঠাৎ দাঁড়াল মুখোমুখি,
মহাসুখী, জীবনমৃত্যুর বিবিক্ত উল্লাসে রভসে অবশ ?

মুহূর্তের সূতে বাঁধা স্মৃতি আর স্বপ্নের পাহাড়ে ঘেরা পাড়ে

বালিচরে ঘাসের আভাসে নাচে একাএক
শুভ্রকেশ প্রবীণ সারস ॥

प्रवीण सारस

जहाँ पहाड़ तिरछा हो कर नदी की रेत में उतर गया है
वहीं, अचानक स्तब्धता भंग होने पर वह दिखाई दी थी,
अकेली, मैं अपलक ताकता रहा, परिचय-अपरिचय के बीच,
वन के ढाल पर अचानक आमने-सामने की भेंट,
ओठों में कोई शब्द नहीं, सोचने-न-सोचने के बीच
निस्तब्धता कुलबुलाती रही,

उस ने क्या कहा था ?
कहा था : प्रियतम, मेरे चित्त ने जीवन-मृत्यु के
प्रत्येक पल के सूत्र से प्राणों के बन्धु को
जिस बाहुबन्धन में गूँथ लिया था, वही तुम्हारे विस्मय को सौंपे जाती हूँ,
मुझे तुम नीरव निर्जन आशीर्वाद से बाँध लो।
या कि उस ने कुछ नहीं कहा था ?
मेरा ही हृदय अपनी नग्नता में माथा झुका कर
अचानक उस के सामने खड़ा हो गया था,
परम सुख में, जीवन-मृत्यु के विविक्त उल्लास से रभस में अवश हो कर ?

पल के सूत्र में बँधी स्मृति और स्वप्न के पहाड़ से घिरे किनारे पर
रेतीले टापू की घास के आभास में नाच रहा है
एक अकेला शुभ्रकेशी प्रवीण सारस ॥

स्मृति सत्ता भविष्यत
१५

भयेर वन

किसेर भय ? ए नय सखी अप्राकृत शहर;
कुटिल नेइ, इतर नेइ, गृध्नु नेइ वने ।
ए शुधु वन, पाहाड़, बालि, झरनाधोया नदी,
किसेर भय ? शोनो पाखिर गान आटप्रहर,
सरा-र डाक दुपुर भर शुनते पाओ यदि
जेनो से छुटे, बेरिये यावे, रेखो ना भय मने ।

पाथर आनि, आगुन ज्वालि, काटबे भालो दिन,
या होक रांधो, बेंधो ना खोपा, नदीते करो स्नान,
नीलाकाशेर तलाय देखो हीरार आलो क्षीण
ज्वलबे ठिक तोमार गाये ठिकरे झलमले ।
किसेर भय ? देहाते केउ करे असम्मान ?
स्वच्छ जले नामते पारो प्राकृत वल्कले
धारार वेगे । नाटक कोथा ? गीतिकाव्य तुमि ।
श्रोता किंवा देखार लोक शुधु एकटि जन ।

किसेर भय ? एका आकाश रौद्रे नाचे आहा रे !
तोमाके देखे । पाहाड़, नदी, बिजाशालेर वन,
तोमारइ शुधु तारिफ करे पाखिरा कत हाजारे,
एगिये चलो, पलाशदिने किछुइ नेइ भयेर,
ए तो शिमुल, रङ दियेछे शालेर ऋजु बाहारे,
डाइने काँटावने ओ शुधु तनुपर्ण खयेर ॥

२४।२।६०

खैर का वन

किस का डर है ? यह अप्राकृत शहर थोड़े ही है सखी;
वन में न कुटिल है, न पराये हैं, न लोलुप है ।
यहाँ तो बस वन है, पहाड़ है, रेत है, झरना धुली नदी है,
यहाँ किस का डर है ? आठों पहर पक्षियों का गीत सुनो,
भरी दोपहरी में अगर वराह की डकराहट सुनाई पड़े तो
समझ लो वह दौड़ता हुआ गुजर जायेगा, मन में डर मत पालना ।

मैं पत्थर ले आता हूँ, आग जला देता हूँ, मजे में दिन कट जायेगा,
जो कुछ हो पका लो, जूड़ा मत बाँधो, नदी में स्नान कर लो,
नीले आकाश के तले हीरे का यह महीन उजाला देखो तो
तुम्हारी देह पर बिखर कर झलमलाने लगेगा ।
किस का डर है ? देहात में क्या कोई निरादर करता है ?
प्राकृत वल्कल धारे तुम नदी की धार के स्वच्छ जल में
उतर सकती हो । नाटक कहाँ है ? तुम तो गीतिकाव्य हो ।
श्रोता या दर्शक के नाम पर बस एक ही जना है ।

किस का डर है ? एकाकी आकाश कैसा धूप में नाच रहा है !
तुम्हें देख कर । पहाड़, नदी, बीजाशाल का वन,
ये हजारों पक्षी सिर्फ़ तुम्हारा ही गीत गा रहे हैं,
आगे बढ़ो, इस पलाश के दिन डर की कोई बात नहीं है,
वह तो सेमल है, सुहानी बहार में लाल रंग गया है,
दाहिनी तरफ़ कांटों के वन में वह तो सिर्फ़ पत्रधारी खैर है ॥

२४।२।६०

सार्कासेर बाघ

ग्रामे ग्रामान्तरे शुनि महाउत्तेजना,
प्रकृत सन्त्रास ओ रटे। शहरेर सार्कासेर बाघ
पालियेछे बाघोया पाहाड़े घेरा वनेर आड़ाले।
उपद्रव प्रायइ घटे। आमरा एसेछि कयजना
बाड़्लो कुठिते, आमंत्रित ना हलेओ रवाहूत बटे।
तिन पा बाड़ाले राते ठिक देड़टाय
शुनेछि से मोटा चोख देखा याय, हिंस्र ज्वाला राग
प्रचण्ड आक्रोशे ज्वले, खण्डित मुक्तिते
प्रचण्ड आक्रोशे : केनना से खोंचार सच्छल सुख चाय
पलातक अनभ्यस्त स्वाधीन अरण्ये अप्रस्तुत
फाँसिकाठे आसामीर दुर्गत दीक्षाय।

आमादेर रात्रि काटे काँटाझोपे घासेर पोकाय
कँपोय मशाय दीर्घ प्रतीक्षाय, शब्द शुनि,
शुनि आज ए ग्रामेर छागल बाछुर
शुनि काल ओ ग्रामेर मानुषेर छेलेमेये गेछे।
ताड़ा करि कयजना। च'ले याइ बहुदूर
बेछे बेछे ए झोप से झाड़। पण्डश्रम।
शहरेर सार्कासेर भूतपूर्व बाघेर दारुण चतुर खेल्,
किछुटा वा सुधार अभ्यासे आर किछुटा वा घासेर विकारे
येन वा से कोटिपति लोभ, येन सारा विश्वेर शिकारे
तार लोभ, तृप्तिहीन चिरदुस्थ प्रतियोगिताय।

अग्नकुनो बाघेराओ ताइ ताके भय करे।
आर आमादेर अरण्यवासेर ताइ बोध नेइ,

सर्कस का शेर

गाँव-गाँव में दूर-दूर तक सुनता हूँ भारी खलबली मच गयी है
सचमुच सन्त्रास भी छाया है। शहर के सर्कस का शेर
छूट कर घेरो वाले पहाड़ से घिरे जंगल में जा छिपा है।
जब-तब उपद्रव होता ही रहता है। हम कई जने
बँगले में आ डटे है, आमन्त्रित न सही, शोर से ही खिच आये हैं।
चार कदम चलते ही रात में ठीक डेढ़ बजे
कहते हैं वे गोल आँखें दिखाई पड़ती है, हिंसा की ज्वाला
प्रचण्ड आक्रोश से जलती है, खण्डित मुक्ति पर
प्रचण्ड आक्रोश में : क्योकि वह पिंजड़े का निर्द्वन्द्व सुख चाहता है
फाँसी के तख्ते पर चढे आसामी की तरह,
वह भगोड़ा जंगल की अनभ्यस्त स्वाधीनता के लिए तैयार नही है।

कँटीली झाड़ियों, घास के कीड़ों, केंचुओं और मच्छरो के बीच
दीर्घ प्रतीक्षा में हमारी रात कटती है, शोर सुनते रहते है,
सुनाई पड़ता है, आज इस गाँव के बकरे-बछड़े
कल उस गाँव के लड़के-लड़की चले गये।
कई जने पीछा करते हैं। झाड़-झंखाड़ों को छानते
बड़ी दूर निकल जाते है। पर सारी मेहनत बेकार।
शहर के सर्कस के भूतपूर्व शेर का यह भीषण चालाकी भरा खेल,
कुछ तो मूल की आदत के कारण और कुछ बिगड़े हुए शौक के लिए
मानो वह करोड़पति का लोभ हो, मानो दुनिया भर के शिकार का
उसे लोभ हो, अनबुझ बीमार होड़ मे।

जनम के जंगली शेर भी इसी लिए उस से डरते है।
और इसी लिए हमारे अरण्य-वास का भी कोई अन्त नही,

कारण ए उपद्रव दूर करा आमादेरओ जिद, रोख, व्रत !
ताइ अन्धकारे प्रतिरात्रे आमरा कयजन थाकि छद्मवेशे,
सदाजाग्रत वीक्षाय, येमन छिलेन लेनिन स्तालिन
उनिशशो सतेरोर अक्टोबरे उद्यत प्रस्तुत,
प्राय सेइ मन निये—बड़तेइ दाओ यदि छोटर उपमा—
आमराओ चुप क'रे बसि, किवा छुटि निःशब्द सञ्चारे,
सर्पगन्धा पाये पाये सिसु शाल सेगुनेर उदग्रीव अद्भुत
तीक्ष्ण आग्रहेर निस्तब्ध आश्लेषे, प्रकृतिर नीरव उत्साहे,
सभासमितिर चेये ढेर शक्त क्षिप्र तितिक्षाय ॥

३१।३।६०

কারণ এ উপদ্রব দূর করা আমাদেরও জিদ, :
তাই অন্ধকারে প্রতিরাত্রে আমরা ক'জন থাকি
সদাজাগ্রত বীক্ষায়, যেমন ছিলেন লেনিন স্ব
উনিশশো সতেরোর অক্টোবরে উদ্যত প্রস্তুত,
প্রায় সেই মন নিয়ে—বড়তেই দাও যদি ছঃ
আমরাও চুপ ক'রে বসি, কিংবা ছুটি নিঃ
সর্পগন্ধা পায়ে পায়ে সিসু শাল সেগুনের চব
তীক্ষ্ণ আগ্রহের নিস্তব্ধ আশ্লেষে, প্রকৃতির
সভাসমিতির চেয়ে ঢের শক্ত ক্ষিপ্র তিতিক্ষ

২১।১।৬০

असमय

बड़ा ही अच्छा लगा था, देह शीतल हो गयी, और मन में—
चिन्तन में परम तृप्ति लहरा गयी, ठीक जैसा तब होता है
जब मिज़ाज हिमानी के उजाले के उत्सव में टिक जाता है
या और किसी ठाठ में सारा समय आलाप से झाले तक एक
हो कर जम जाता है, अली अकबर खाँ के हाथों के बीच
कठोर धातु की धूप और अक्षय तुहिन बिन्दुओं में।
बड़ी ही अच्छी लगी थी हेमन्त के सद्यःस्नात प्रभात में
दृष्टि की अपार शान्ति, हृदय के आवेग की स्वच्छता,
स्थिर निश्चिन्तता की प्रसन्न सौगात में आकांक्षा की आशा।
दोनों तरफ़ बाग़ फैला था, पथ पर नम्रता बिखर कर छायी थी,
प्रकृति और मानव का जोड़ा मिल कर अनन्त आमन्त्रण करता
स्मित साम्य में परस्पर निहार रहा था, समान और मुक्त।
बड़ा ही अच्छा लगा था, नदी पर रेत पर और बँधी झील पर
लगातार सफ़ेद रंग झूल रहा था, इस पार-उस पार काँस के झाड़ों में,
दो खंजन टेर रहे थे, लगता था मानो आहृत निखिल के बीच
यहाँ जीवन प्रशान्त संसार में परिणति पा रहा हो,
दुर्वह यौवन स्वयंभर सक्रिय चिन्तन में जी रहा हो।
फिर भी उस दिन किसी प्रत्याशित के भावी द्वार पर नहीं रुका था
यद्यपि संहृत तन-मन परम तृप्ति से भर गये थे,
समय नहीं था, आज किस के जीवन में असमय नहीं है॥

२०।४।६०

असमय

खुबइ भालो लेगेछिल, शरीर जुड़ाल, आर मने—
मनने परम तृप्ति टलोमलो, येमनटि हय
येदिन मेजाज जमे हिमानीर आलोकनन्दने
किंवा आर कोनो ठाटे ज'मे याय समस्त समय
आलापे झालाय एक, आलि आकबरेर दु'हाते
कठिन बातुर रौद्रे आर मुक्ताशिशिरे अक्षय ।
खुबइ भालो लेगेछिल सद्यस्नात हेमन्त प्रभाते
दृष्टिते अपार शान्ति हृदयेर आग्रेगे स्वच्छता,
आकाङ्क्षार आशा स्थिर निश्चितिर प्रसन्न सम्भोगाते ।
दु'पाशे बागान चले, पथ छेये छड़ाय नम्रता
अन्तहीन आमन्त्रणे प्रकृति-मानुषे जोड़े मिले
येये थाके स्मित साम्ये, केउ कारो मानेनि वश्यता ।
खुबइ भालो लेगेछिल, नदीते बालिते बाँधा झिले
अविश्राम दोले शादा, काश झोपे, एपारे ओपारे
डाके दुटि कादाखोंचा, मने हय आहूत निखिले
एखाने जीवन पाय परिणति प्रशान्त संसारे,
दुर्वह यौवन बाँचे स्वयम्भर सक्रिय मनने ।
सेदिन मामिनि तबु प्रत्याशित कारो भावी द्वारे,
यदिओ परम तृप्ति पेलुम संहत देहमने,
समय छिल ना, आज असमय कार ना जीवने ?

२०।४।६०

असमय

बड़ा ही अच्छा लगा था, देह शीतल हो गयी, और मन में—
चिन्तन में परम तृप्ति लहरा गयी, ठीक जैसा तब होता है
जब मिजाज हिमानी के उजाले के उत्सव में टिक जाता है
या और किसी ठाठ में सारा समय आलाप से झाले तक एक
ही कर जम जाता है, अलो अकबर खां के हाथों के बीच
कठोर धातु की धूप और अक्षय तुहिन बिन्दुओं में।
बड़ी ही अच्छी लगी थी हेमन्त के सद्यःस्नात प्रभात में
दृष्टि की अपार शान्ति, हृदय के आवेग की स्वच्छता,
स्थिर निश्चिन्तता की प्रसन्न सौगात में आकांक्षा की आशा।
दोनों तरफ बाग फैला था, पथ पर नम्रता बिखर कर छायी थी,
प्रकृति और मानव का जोड़ा मिल कर अनन्त आमन्त्रण करता
स्मित साम्य में परस्पर निहार रहा था, समान और मुक्त।
बड़ा ही अच्छा लगा था, नदी पर रेत पर और बँधी झील पर
लगातार सफेद रंग झूल रहा था, इस पार-उस पार कांस के झाड़ों में,
दो खंजन टेर रहे थे, लगता था मानो आहत निखिल के बीच
यहाँ जीवन प्रशान्त संसार में परिणति पा रहा हो,
दुर्वह यौवन स्वयंभर सक्रिय चिन्तन में जी रहा हो।
फिर भी उस दिन किसी प्रत्याशित के भावी द्वार पर नहीं रुका था
यद्यपि संहृत तन-मन परम तृप्ति से भर गये थे,
समय नहीं था, आज किस के जीवन में असमय नहीं है॥

२०।४।६०

आलेख्य

I, with no rights in this matter,
Neither father nor lover. —Roethke

चेना मुख, एइमात्र,
आर या, ता एकात्म कल्पना,
सहानुभूतिर आभा, ये कम्प्र जानाय
अस्पष्ट वास्तव शिल्पे आत्मीयता पाय
पात्रापात्र निर्विशेषे हिरण्मय सत्ये भरे कानाय कानाय ।

देखेछि क'दिनमात्र शिक्षार्थीर शून्य परिचये ।
तारपरे देखा शुधु दूर थेके, उपलक्ष-सेतुहीन
एवं दुस्तर वयसेर एपारे ओपारे ।
देखेछि चलेछे काँधे थलि पाये चञ्चल चप्पले
शुनेछि काजेर मेये, घरे दुस्थपङ्गु बहु मुख ।

कदाचित् हेसेछे से लाजुक चाउनिते,
कखनो वा दुइहाते तुलेछे थेनाय ।
देखेछि कयेक मास, हयतो बछर,
चेना मुख, निटोल मुखेर ढौल यौवने भास्वर, अथच करुण,
सुप्रतिष्ठ अथच प्रतीक्षमान स्निग्ध चिर मेयेलि स्वभावे ।
कदाचित् दु'चारटि कथा, लेखापड़ा छेड़े लालदीघिर लज्जाय,
आर आमार घोलाटे एइ कलकातार शुकनो काने
लेगेछे देशज छन्द प्राणेर पशार सजल ध्वनिते ।

आलेख्य

'इस मामले में मुझे कोई हक नहीं है,
क्योंकि मैं न पिता हूँ न प्रेमी ।' —रोइके

बस इतना ही कि चेहरा परिचित है,
और जो कुछ है वह निरी कल्पना है मेरी,
सहानुभूति की आभा, जो कम्पन में प्रकट होती है
अराष्ट और यथार्थ शिल्प में आत्मीयता पाती है
पात्र-अपात्र सभी को हिरण्मय सत्य से लबालब भर देती है ।

बस उसे कुछ ही दिनों देखा था कोरी विद्यार्थिनी के रूप में ।
उस के बाद तो उसे सिर्फ़ दूर से ही देखता रहा, उपलब्ध के हेतु के बिना
और दुस्तर आयु के इस पार-उस पार ।
देखता रहा कि वह कन्धे पर झोला और पैरों में चंचल चप्पलें डाले चली
जा रही है,
सुनता रहा कि वह काम करती है, घर में कई बीमार मराहियों का पेट
भरने के लिए ।

कभी-कभी वह आत्मीयी चितवन से मुस्कराती है,
कभी पहचान कर दोनों हाथ उठा दिये हैं ।
कई महीनों या शायद बरसों उसे देखा है,
परिचित चेहरा, यौवन से भास्वर सुडौल मुख, यदपि नम्र,
आत्मरत फिर भी चिर स्निग्ध नारी-स्वभाव से ज्योतिष्मान ।
कभी-कभी दो-चार बातें की हैं, पढ़ाई-लिखाई में कुछ [illegible] की लाज में भरी,
और मेरे इन भटकते [illegible] के सूने कानों में
प्राणों की व्यथा का [illegible] [illegible] [illegible] भर उठा है ।

चेना मुख, कपालेर स्वच्छताय अर्धचन्द्रे आनत अलक,
स्वेदाक्त श्रावणे खोंपा किंवा बिनुनिते
अघ्राने आवार हाओया लाले देखि कुश्चित उजाने।
एकालेर कृष्णकलि, कखनो वा देखेछि से एका नय,
सङ्गे याय एकेले युवक, परने पाजामा।

तारपर देखिनि अनेक दिन।
अथच से प्रतीक आमार मनेर पापारे,
कारण आमिओ बटे, आमरा सबाइ यात्री
दिनरात्रि बाङ्लार मरते कान्तारे
ताइ से कि झड़े जले खुलेछे दुयार,
च'ले गेछे आकाङ्क्षित दूर अभिसारे
अतिनिकटेर बहु मुख छेड़े एकाकीर निःसीम निराय?

नाकि, से गियेछे तार जीवनेर शेष प्रतिश्राय
तिले तिले निजवासभूमे परवास छेड़े सत्तार दुर्गम तीरे
अतल समुद्रजले किंवा नील नील भिड़े
पाहाड़ेर अनन्त मिछिले?

आमि तार दु ख सुख किंवा जानि, आमार छिल कि अधिकार?
केन तबे शोक?
आजइ वा कि अधिकार बलो?
से शुधु विधुर दूर यौवनेर चेनामुख—एइ बइ किछु नय,
समस्त देशेर चेना यौवनेर हासिमुख
आर असहाय दुटि छलोछलो चोख जीवने उन्मुख।
आमि तार बाप नइ, समवयसीओ नइ॥

१।५।६०

परिचित चेहरा, स्वच्छ माथे के अर्धचन्द्र पर लोटती अलक,
स्वेद भरे सावन में जूड़ा बाँधे या चोटियाँ लटकाये
और अगहन में देखा है कि हवा में उस के कुंचित केश उड़ रहे हैं।
आधुनिक कृष्णकली, कभी-कभी देखा है कि वह अकेली नहीं है
साथ में आज कल का कोई नौजवान है, पाजामा पहने।

इस के बाद बहुत दिनों तक वह दिखाई नहीं दी।
फिर भी वह मेरे मन के सागर में प्रतिमा की तरह समायी है,
क्योंकि मैं ही नहीं, हम सभी राही हैं
दिन रात बंगदेश के रेगिस्तानों और जंगलों में,
इसी लिए क्या वह आँधी-पानी में द्वार खोल कर
आकांक्षित अभिसार में दूर चली गयी है
निकटवर्ती चेहरों को छोड़ कर एकाकी की निःसीम निशा में?

या कि वह चली गयी है अपने जीवन की अन्तिम प्रतिष्ठा के लिए
तिल-तिल कर अपनी जगह का परायापन त्याग कर सत्ता के दुर्गम तीर पर
अतल समुद्र की लहरों में या उस सुदूर नीली भीड़ में
पहाड़ों की अनन्त कतार में?

मैं उस का सुख-दुख क्या जानूँ, मेरा अधिकार ही क्या था?
फिर यह शोक क्यों?
आज ही मेरा क्या अधिकार है, बताओ?
वह तो बस एक विधुर सुदूर यौवन का परिचित चेहरा है—इस के अलावा
कुछ नहीं,
समस्त देश का परिचित यौवन का मुसकराता चेहरा
और दो असहाय छलछलाती आँखें—जीवन को उन्मुख।
मैं न उस का बाप हूँ, न समवयसी॥

१।५।६०

बन्धुस्मृति : सुधीन्द्रनाथदत्त

ए आमार चेना नदी, उँचुनिचु, पाहाड़, प्रान्तर,
समतल पार हय नाना वैपरीत्ये, दीर्घकाल,
उत्स थेके पाड़े पाड़े—एइ मैत्री ! एइ मनान्तर !
उपले पलिते तीव्र विड़म्बित उल्लासे विक्कारे
एकाले, एदेशे, क्षुब्ध आमादेर हाजार विकारे।

आत्मसचेतन प्राण ताइ उटपाखिर मतो
हाराबे उत्तेर दिशा ? अर्थहीन भूकम्पे निःस्सीम ?
ताइ दीप्र यौवनेर दीपावली हयेछे कि हिम
वैदेही नास्तिर गर्भे ? व्यक्तिरूप शून्य पञ्चभूते ?
ताइ कि मुहूर्त-तत्त्वे मुमूर्षार एत क्षिप्र ताल ?

बहु उष्ण द्विप्रहर, बहु सन्ध्या, अनेक सकाल
मने मने बेये चलि, आनि चेना चल्लिशबछर;
काने शुनि, अभिन्न मनने किंवा उच्च मतान्तरे
सानुकम्प अग्रजेर, सहकर्मी सौहार्देर स्वर—

अकैशोर बन्धुस्मृति प्रौढ़ एइ बद्वीपे मुखर ॥

१५।७।६०

बन्धुस्मृति : सुधीन्द्रनाथ दत्त

मैं इस नदी को पहचानता हूं, स्रोत से निकल कर कभी ऊँचे, कभी नीचे
पहाड़ों, मैदानों और समतल पर नाना विरोधों से टकराती दीर्घकाल से
बहती आयी है—यह मैत्री ! यह कलह ! शिलाओं से जूझती
कगारों को सहलाती तीव्र क्लेश में उल्लास में धिक्कार में
यहां, वर्तमान में, हमारे हज़ारों क्षुब्ध विकारों में।

आत्मसचेतन प्राण क्या इसी लिए शुतुरमुर्ग की तरह
स्रोत की दिशा खो बैठें ? अर्थहीन निःसीम भूकम्प में ?
क्या इसी लिए यौवन की दीप्त दीपावली ठण्डी पड़ गयी है
देहहीन नास्ति के गर्भ में ? व्यक्ति का रूप शून्य हो गया है पंचभूत में ?
क्या इसी लिए क्षण के तत्त्व पर मरणेच्छा की इतनी क्षिप्र ताल है ?

बहुतेरी उष्ण दोपहर, बहुतेरी सांझ, अनेकों सुबह
मैं मन ही मन पार करने लगता हूं, फेर लाता हूं चीन्हे हुए चालीस वर्ष;
कानों में सुनाई पड़ने लगता है, अभिन्न मनन में अथवा उग्र मतभेद में
सानुकम्प अग्रज का, सहकर्मी सौहार्द का स्वर—

आकैशोर बन्धुस्मृति इस प्रौढ़ मुहाने पर मुखर है ॥

গ্রীষ্মনিসর্গ

দুদিকে বর্তুল চৈত্য,
প্রাকৃত বিন্যাসে গড়া পাথরে মাটিতে।
আর অন্যদিকে করভোষ সমান-লম্বিত দৃঢ় দীর্ঘ শিলা।
নীচে আছে সবুজ গালিচা কিংবা সবুজ মাটিতে, থাকে থাকে
যেখানে হঠাৎ খুব খাড়া পৃথিবী রক্তিমা।
জানি না সে কোন্ খাপো দৈব পরিশ্রমে
কেটেছিল মাটি আর তুলেছিল বাঁধ, মাটির পাহাড়
জমির সুবিধে বহুদিন ধ'রে পেশীর বিক্রমে,
তারপরে হয়তো বা লেগেছে সেখেছে বাদ অথবা আইন—
কারণ, জমি যে রচনা করে জমি নয় তার।

নীচে আছে সেইখানে।
প্রবীণ কী কোমলতা এখানে সূর্যের,
স্নেহ ঝরে শিশিরে বৃষ্টিতে, মানবীর প্রেমে যেন,
দৈবতার ছায়াময় গানে যেন
বাঁশিতে মেদুর হয়ে ওঠে বুঝি তীব্রস্বর বৈশাখী তূর্যের।

সে কীর্তনে জেগে থাকে বৃক্ষহীন সব শষ্পভূমি,
আর দুটিমাত্র খঞ্জনায় বিষাদের আখর ভোলায়;
আর শফরীউন্মুখ স্বচ্ছ বাপীটুকু, প্রায় মানুষের মতো,
গ্রীষ্মজয়ী আকাশমুকুরে মহৎ বিস্ময়,
যেন বা পৃথিবী দেহ মেলে দিয়ে গ'ড়ে তোলে, দুর্গম রক্ষায়
রাখে জলাশয়;

ग्रीष्मनिसर्ग

दो तरफ वर्तुलाकार चैत्य,
प्राकृत विज्ञान के सहारे पत्थर-मिट्टी से बना हुआ।
और तीसरी ओर हाथी की जाँघों जैसी बराबर लम्बी दो शिलाएँ।
मैं उतर कर हरे गलीचे पर आ जाता हूँ या कि हरी पट्टी पर, चकती
जहाँ अचानक रूखी धरती रँगीली हो गयी है।
न जाने कब किस किसान ने दैवी परिश्रम से
मिट्टी काटी होगी और यह बाँध खड़ा किया होगा, मिट्टी का यह पहाड़
खेत की रचना में लगातार पेशियों के विक्रम से,
फिर शायद किसी लठैल ने झगड़ा खड़ा कर दिया होगा या मुकद्दमा—
क्योंकि जो खेत रचता है खेत उस का नहीं होता।

मैं उतर कर वहीं आ जाता हूँ।
यहाँ सूर्य की कैसी प्रवीण कोमलता है,
शिशिर में वर्षा में स्नेह झरता है, मानो मानवी के प्रेम में,
देवता के छायामय गीत में मानो
वैशाखी सूर्य का तीव्र स्वर मेदुर हो कर बाँसुरी बन जाता हो।

उस कीर्तन में जगती रहती है वृक्षहीन सद्य हरियाली,
और बस दो खंजन विषाद के बोलों के ताल में;
और मछलियों में उभरती स्वच्छ बावड़ी, प्राय मनुष्य की भाँति,
ग्रीष्मजयी आकाश के मुकुर में मरु का विस्मय,
मानो धरती अपनी देह मिला कर रच रही हो, दुर्गम रक्षा में
जलाशय को ढक लेती हो;

आर, उपरे सूर्येर हासि प्रतीक्षाय स्मित, निःसंशय;
आर दुटि वन्यफुल फुटे थाके निर्वित्तेर शालीन शोभाय।

स्निग्ध घामे माथा राखि, आकाशे बिछाइ चोख कान।
कोथाय ये तुमि !

और ऊपर सूर्य की मुस्कराहट प्रतीक्षा में स्मित, निःसंशय
और दो बनफूल खिलते रहते हैं निर्धन की शालीन शोभा से ।

स्निग्ध घास पर सिर टेक देता हूँ, आकाश में आँख-कान पसारता हूँ
आखिर तुम कहाँ से !

এ মৃত্যুসংবাদে

এ মৃত্যুসংবাদে ঝ'রে প'রে গেল মনের বকুল,
কাগজের কোণে—এই দ্বিতীয় মৃত্যুর।
সেবারেও মৃত্যু ঘটে, যখন সে, ভুল সব ভুল—
এই ব'লে চ'লে গেল, হাত ধ'রে, আরেক মিত্রের।

তবু একদিন ছিল অস্তিত্বের অশরীরী তাপ
স্মৃতির সুগন্ধে ভরা আঁচলের হাওয়া-ঝরা ফুল।
এই মৃত্যু ঘোর মৃত্যু, পত্রপুষ্পে বিরাট বকুল
আজকে উন্মূল হল। আজ মাটি দগ্ধ অভিশাপ॥

৮।১।৬১

इस मृत्युसंवाद से

इस मृत्युसंवाद से झर कर मर गया है मन का वकुल,
अख़बार के कोने में—इस दूसरी मृत्यु के संवाद से।
यह भी मृत्यु ही थी, जब वह, 'गलत है, सब गलत है'—
कह कर चली गयी, एक और मित्र का हाथ थाम कर।

फिर भी इतने दिनों तक अस्तित्व का अशरीरी ताप बना हुआ था
स्मृति की सुगन्ध से भरा आंचल की हवा से झरा फूल।
यह मृत्यु घोर मृत्यु है, पंखुरियों में बिखर कर विराट् वकुल
आज निर्मूल हो गया। आज मिट्टी दग्ध अभिशाप है॥

८।१।६१

लण्ठन ज्वेले

पाण्डुर चाँद डुबे गेल ऐ ऊर्मिचवल नीले,
आमार समय असमय एकाकार;
नैःशब्द्येर ढेउ भेङे पड़े ऊर्मितरल नीले
एकटि दीर्घश्वासे ।

अतल जलेर अश्रु एवं विवर्ण महाकाशे
चिरकाल घुमि क'रे याब पारापार ।

भावि अन्यथा हत कि तोमाके दिले !
किछुइ कि हत अन्यथा ?
ताइ भावि विना प्रत्यारो,
अमावस्यार विवेचना क'रे देखवे आरेकवार ?
लण्ठन ज्वेले पड़वे आमार कथा ?

१७।१।६१

लालटेन जला कर

पाण्डुर चाँद डूब गया उस ऊर्मिधवल नील में,
मेरे दिन-रात एकाकार हो गये;
निस्तब्धता की लहर टूटी उस ऊर्मितरल नील में
एक ठण्डी साँस में बिखर गयी।

अतल जल के आँसुओं और विवर्ण महाकाश में
लगता है मैं हमेशा इस पार से उस पार आता-जाता रहूँगा।

सोचता हूँ अगर तुम्हें सौंप देता तो क्या कुछ और होता !
क्या कुछ भी और हो सकता था ?
इसी लिए प्रत्याशा किये बिना ही सोचता हूँ,
अमावस्या में क्या एक बार और विचार कर के देखोगी ?
लालटेन जला कर क्या मेरी कथा पढ़ोगी ?

१७।१।६१

येमन जेनेछे चण्डीदास वा दान्ते

उदासीन चोखे दीर्घपक्ष्म भिड़े
कार यातायात ? चिरकाल उद्भ्रान्ति !
चेना-अचेनाय चेतनाय कोथा क्षान्ति ?
उभवली ऐ हृदये उष्ण नीड़े
से कोन् आकाश वासा बेंधे पाय शान्ति ?

ओगो मनसिजा, तुमि ये चाइले भिक्षा
अतनुर आयु त्रिकालेर पदप्रान्ते,
से कि शुधु मनुपराशर-मापा शिक्षा ?
से कि नितान्त प्रथा-मतो ? तुमि जानते
प्रेमेर तृप्ति-अतृप्ति एकइ दीक्षा,

चिर-अस्थिर उदात्त एक शान्ति,
येमन जेनेछे चण्डीदास वा दान्ते ?

१८।१।६१

अन्य श्रेष्ठ कविताएँ

अनुवादक

डॉ. भारतभूषण अग्रवाल

डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी

जगत शंखधर

जगदीश

पलायन

मफरी चोखेर सरल चाहनि, चोखेर कोलेर
कालिमार माया चोख भूलियेछे—चिकन कपोल,
सिल्कमसृण नाशा आर छोटो पाण्डु ललाट।
घ्राण टानि मृदु शीतल आँधारे सुरभि चूलेर।

स्वल्पगन्धि रक्तसून सरस अधर
मुखे रेखेछि ओ वक्षे शुनेछि ग्रहरेर वेग।
देखि मुहूर्त-बिम्बे चिरन्तनेरई छवि
उर्वशी आर उमाके पेयेछि एइ प्रेमपुटे।

सातटि दिन ओ रात्रि एकटि कविता आमार
प्रेमेर कविता करेछ आमाके।

फोटाले जे फूल
से फूल शेफालि। तीर्थयात्री हृदय आमार
आर नाहि रय ए कयदिनेर पान्थशालाय॥

१९२८

पलायन

चपल आँखों की सरल चितवन ने, आँखों की कोरों की
कालिमा की माया ने आँखें लुभा ली हैं—चिकने गाल,
रेशम-कोमल स्वच्छ और गोरा नन्हा ललाट। मैं ने
सुगन्धित केशों के मृदुल शीतल अँधेरे में साँस ली है।

उन लाल-लाल सरस ओठों की लघु परिधि को मैं ने
ओठों से बाँधा है और वक्ष में ग्रहों की गति सुनी है।
क्षण के बिम्ब में मैं ने चिरन्तन की छवि देखी है
उर्वशी और उमा दोनों को पाया है इस प्रेम-पुट में।

सात दिन और सात रात मेरी एक कविता बन गये हैं
तुम ने मुझे प्रेम का गीत बना दिया है।
                                        तुम ने जो खिलाये हैं
वे तो शेफाली के फूल हैं। मेरा तीर्थयात्री हृदय
इस दो दिन की पान्थशाला में अब और नहीं रह सकता ॥

१९२८

अभीप्सा

ए आकाश मूछे दाओ आज,
अन्धकारे रात्रि लेपे दाओ,
ज्योत्स्ना डूबिये दाओ अनिद्रार घनकालिमाय ।
दुई चोख ढेके दाओ, वातासेर व्यूह भेद करे
रात्रीर घोमटा-घेरा समुद्रेर पदक्षेपध्वनि
ढेके एशो द्रुतपदे
रुद्ध करे निश्वास आमार
शब्दहीन चरणसंचारे ।
स्थिरता-निःशब्द अन्धकारे
अनिद्रार शून्ये होक निरालम्ब आमादेर
मुखोमुखि देखा ।
पृथिवी के चूर्ण चूर्ण करे
आकाशे छड़िये एशो अन्धकारे हृदये आमार ॥

१९३१

कामना

हम आकाश को पोंछ डालो आज,
अँधेरे पर रात का लेप कर दो
चाँदनी को अनिद्रा की घनी कालिमा में डुबो दो।
साँसों को बाँध दो, वायु का व्यूह भेद कर
रात के घूँघट में बन्द समुद्र की पदचाप दबा कर
चली आओ
मेरी साँसों को
अपनी निःशब्द चाल से रूँध कर।
स्थिरता के इस निःस्वन अँधियारे में
अनिद्रा के शून्य में निराधार
हमारा परस्पर मिलन हो।
पृथ्वी को चूर-चूर कर
आकाश में बिखराती आओ इस अन्धकार में मेरे हृदय में ॥

१९३१

आमि नहि पुरुरवा । हे उर्वशी,
क्षणिकेर मरअलकाय ।
इन्द्रियेर हर्ष, जानो ग'डे तुलि आमार भुवन ?
एशो तुमि से भुवने, कदम्बेर रोमांच छड़िये ।
क्षणेक सेखाने थाको,
तोमार देहेर हाय अन्तहीन आमन्त्रणवीथि
पूरि ये समय नेई—शुधु तुमि थाको क्षणकाल,
क्षणिकेर आनन्द आलोय
अन्धकार आकाशसभाय
नग्नताय दीप्त तनु ज्वालिये ज्वालिये जाओ
नृत्यमय दीप्त देयालिते ।

आर रात्रि, रँबे कि उर्वशी,
आकाशेर नक्षत्रआभाय, रजनीर शब्दहीनताय
राहुग्रस्त हये रँबे बाहुबन्धे पृथिवीर नारी
परश-कम्पित देह सलज्ज उत्सुक ?
आमि नहि पुरुरवा, हे उर्वशी,
आमरण आसङ्गलोलुप,
आमि जानि आकाश-पृथिवी
आमि जानि इन्द्रधनु प्रेम आमादेर ॥

१९२९

उर्वशी

मैं पुरूरवा नहीं हूँ। उर्वशी,
मर्त्यलोक की इस क्षणिक अलका में
मैं इन्द्रियों के हर्ष से, जानती हो, अपना भुवन रचता हूँ ?
आओ, कदम्ब का रोमांच बिखराती तुम इस भुवन में आओ।
क्षण-भर यहाँ ठहरो,
तुम्हारी देह की इस अन्तहीन आमन्त्रण-वीथी में विचर सकूँ
हाय, इतना समय कहाँ—बस तुम क्षण-भर ठहर जाओ,
क्षण के इस आनन्द-आलोक से
अँधियारी आकाश-सभा में
नृत्यमयी दीप्त दीपावली से
नग्नता में दीप्त तनु चमका जाओ।

और रात ठहरोगी क्या उर्वशी,
आकाश की नक्षत्रसभा में, रजनी की शब्दहीनता में
राहुग्रस्त हो कर क्या बाहुबन्धन में ठहरेगी पृथिवी की नारी
परश-कम्पित देह सलज्ज उत्सुक ?
मैं पुरूरवा नहीं हूँ, हे उर्वशी,
आमरण आलिंगन-लुब्ध,
मैं जानता हूँ आकाश और पृथ्वी
मैं जानता हूँ हमारा प्रेम इन्द्रधनुष है॥

१९२९

छेद

आमार हृदय हिम-अवसाय करेछि विकल ।
काने केंरे हाहाकार देओलिया उत्तरेर हाउया
वनेर किनारे मोर बाइलोर दुई सानि धरे
वानप्रस्थ धरियाछि—छिंड़ियाछि तोमार शिकल ।
दुर्भिक्ष करेछि दूर—शरीर ओ हृदयेर धाउया ।
आमार हृदये आज वनानीर निस्तब्धता भरे ।

हेया नाई अपमान व्यर्थतार ज्वाला मूर्खतार ।
हेया नाई गान्धिजीर नाटकीय जय-अभियान,
हेया नाई सुकोमल रूपदक्ष रवीन्द्र ठाकुर ।
एखाने आकाश आर शत-शत शालतरु-सार ।
एखाने कलकाता काने कटुकण्ठे करे नाको गान ।
अन्धकार मूर्ति तव कक्ष हते करियाछि दूर ।

प्रभातेर आलो नामे स्नानशुभ्र कुमारीर मतो,
सङ्गीहीन दिन मोर-सङ्गी शुधू वनानी वन्धुर,
सङ्गीहीन रात्रि मोर—प्रेम आर साथी मोर नय ।
मुछेछि तोमारे—(तिक्त घृण्यताय करिनि आहत,
सम्पूर्ण छेड़ेछि—चित्र एकेबारे करियाछि दूर) ।
आकाश घनिष्ठ हेया—सूर्य शून्ये अगुण्ठित रय ।
पृथिवीर स्तब्धताय डूबे गेछे पूर्वराग-सूर ॥

१९३१

विच्छेद

निर्मम अवज्ञा से मैं ने अपने हृदय को टूक-टूक कर डाला है।
उत्तर की खोखली हवा कानों में हाहाकार करती है।
वन के किनारे अपने बँगले के दो कमरों में मैं ने
वानप्रस्थ ले लिया है—तोड़ डाली है तुम्हारी जंज़ीर।
दुर्भिक्ष दूर कर दिया है—शरीर और हृदय की चाहना।
मेरे हृदय में आज बीहड़ की निस्तब्धता झरती है।

यहाँ न व्यर्थता का अपमान है, न मूर्खता का दाह।
यहाँ न गाँधी जी का नाटकीय विजय-अभियान है
न सुशोभन रूपदक्ष रवीन्द्र ठाकुर।
यहाँ आकाश है और शत-शत साल-वृक्षों की क़तार।
यहाँ कलकत्ता अपने कटुकण्ठ से गाना नहीं गाता।
तुम्हारी अन्धकार-मूर्ति मैं ने कमरे से दूर कर दी है।

सवेरे के समय उजाला स्नानधवल कुमारी की भाँति उतरता है,
संगीहीन दिन है मेरा—संगी है बस विषम बीहड़,
संगीहीन रात है मेरी—न कोई साथी है न प्रेम।
तुम्हें पोंछ डाला है—(तीखी घृणा से तुम्हें आहत नहीं किया,
पूरी तरह छोड़ दिया है—चित्र एकदम दूर कर दिया है)।
यहाँ आकाश घनिष्ठ है—शून्य में सूर्य अगुण्ठित रहता है।
पृथ्वी की स्तब्धता में डूब गया है पूर्व-राग का स्वर ॥

१९३१

रात्रिशेषे

आकाशेर दुर्गे नेई पलातका अमावस्या आज।
समुद्रेर स्नायु आज अवसन्न—मरेछे जोयार,
तन्द्राहत पराजित पलातक ढेउयेर सओयार।
आज आर प्रेम नय—निद्राहीन अन्धकार आज।

चित्तेर समुद्र आज शान्त स्थिर बिम्बवती दीघि,
नक्षत्रदेयालि नेई, गोधूलीर देहहीन आलो।
ए आलोते आमि आछि, आर आछे विश्व चार पाशे
से विश्व आमारई मूर्ति—दीर्घ छाया आमार मनेर।

से छायाय प्रेम नेई, से छायाये जागे क्लान्त मन
निशीथ आमार मन जागे आज उग्र अन्धकारे।
निशीथ आमार मन जागे आज उग्र अन्धकारे।
तोमार ओ चोख आज भूले थाक तादेर भापारे।
स्पन्दित आमार चित्ते विधातार गर्भ-अन्धकार॥

१९३१

रात गये

पलातका अमावस्या आज आकाश के दुर्ग में नहीं है।
समुद्र की नसें आज सुप्त हैं—ज्वार बीत चुका है,
लहरों का तन्द्राहत सवार पराजित हो कर भाग गया है।
आज अब और प्रेम नहीं—आज निद्राहीन अँधेरा है।

चेतना का समुद्र आज शान्त और स्थिर बिम्बवती झील है,
नक्षत्रों की दिवाली नहीं, गोधूलि का देहहीन उजाला है।
इस उजाले में मैं हूँ, और उस की बगल में विश्व है
यह विश्व मेरी ही मूरत है—मेरे मन की लम्बी छाया।

उस छाया में प्रेम नहीं है, उस छाया में क्लान्त मन जागता है
मेरा निर्घोष मन आज उग्र अन्धकार में जागता है।
तुम्हारी वे आँखें आज भूली रहें अपनी भाषा,
मेरे चित्त में विधाता के गर्भ का अंधकार स्पन्दित है॥

१९३१

सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति

१।४।२ बृहदारण्यक उपनिषद्

मानुषेर अरण्येर माझे आमि विदेशी पथिक,
मुखोमुखि कथा बलि—ठोके लागे अटल प्राचीर।
विदेशी पथिक आमि एसेछि कि विधातार भूले
पृथिवीर सभागृहे, बुझि नाको भाषा जे एदेर।

प्रकृतिर बूदोयारे एसे पड़ि विदेशी बर्बर,
बर्बर जाने ना हाय! पदे पदे करे अपराध,
कोथा लेगे जाय—सरीसृप तिक्त-फणा।
जलस्थलव्यापी भय देह मन नियत काँपाय।

निरयकाल धरे एई—दिन काटे नित्य तृप्तिहीन,
रात्रिओ प्रशान्तिहीन—त्रिशंकू ए आमार हृदय॥

१९३२

मैं अजनबी हूँ

[सोऽपिभेयस्मादेकाकी बिभेति : बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।२]

मनुष्यों के जंगल में मैं परदेसी की तरह घूमता हूँ,
आमने-सामने बात करते समय आँखें अटल प्राचीरों से टकराती हैं।
परदेसी पथिक की तरह मैं विधाता की भूल से पृथ्वी के इस
सभा-भवन में आ पहुँचा हूँ, मैं इन की भाषा भी नहीं समझ पाता।

प्रकृति की चित्रशाला में मैं विदेशी बर्बर की तरह आ धमका हूँ,
बर्बर यह नहीं जानता और हाय, कदम-कदम पर गलतियाँ करता है,
और न जाने कहाँ से सरीसृपों के तीखे फन फुंकार उठते हैं।
जल-थल-व्यापी यह भय मेरे तन-मन को कँपाता रहता है।

हमेशा यही होता है—दिन तृप्तिहीनता में कटते हैं,
रातें भी प्रशान्तिहीन होती हैं—मेरा यह हृदय त्रिशंकु है।।

१९३२

घुड़सोयार

जनसमुद्रे नेमेछे जोयार,
हृदये आमार चड़ा ।
चोराबालि आमि दूरदिगन्ते डाकि—
कोथाय घोड़स

दीस विश्वविजयी ! बर्शा तोलो ।
केन भय ? केन नीरव मरखा भोला ?
नयने घनाय बारे-बारे ओठापड़ा ?
चोराबालि आमि दूरदिगन्ते डाकि ?
हृदये आमार चड़ा ?

अंगे राखि ना कारोइ अङ्गीकार
चाँदेरर आलोय चाँचर बालि चड़ा ।
एखाने कखनो वासर हय ना गड़ा ?
मृगतृष्णिका दूरदिगन्त डाकि ?
आत्माहुति कि चिरकाल थाके बाकि ?

जनसमुद्रे उन्मथि कोलाहल
ललाटे तिलक टाना ।
सागरेर शिरे उद्वेल भोनाजल,
हृदये आगिर चड़ा ।

चोराबालि डाकि दूरदिगन्ते,
कोथाय पुरपकार ?
हे प्रिय आमार, प्रियतम मोर !

घुड़सवार

जन-समुद्र में आयी है ज्वार,
हृदय में किन्तु मेरे बालुका-वप्र।
मैं बालूपंक, दूर-दिगन्त तक पुकारती—
कहाँ है घुड़सवार ?

ओ दोस्त विश्वविजयी, बरछा तोलो,
भय क्यों, क्या वीर की निष्ठा भूली ?
नयनों में घनीभूत होता बार-बार उठना-गिरना ?
मैं बालूपंक, क्या दूर-दिगन्त तक पुकारती ?
मेरा हृदय क्या बालुका-वप्र ?

मैं क्या नहीं लिये अंगों पर अंगीकरण के चिह्न ?
ये बालुका-ऊर्मि चन्द्र की ज्योत्स्ना तले—
नहीं क्या मधुयामिनी थी यहाँ सजी कभी ?
नहीं क्या मृगतृष्णिका दूर-दिगन्त तक पुकारती ?
क्या मेरी ही आत्माञ्जलि चिरकाल रहेगी शेष ?

जन-समुद्र को करो उन्मथित कोलाहलपूर्ण
भाल पर अंकित करो तिलक।
सागर की चूड़ा पर उद्वेलित लवणजल,
मेरा ही हृदय हाय, व्याघित बालू-वप्र।

मैं बालूपंक, दूर-दिगन्त तक पुकारती,
कहाँ पुरुषकार ?
हे मेरे प्रिय, प्रियतम मेरे।

आयोजन काँपे कामनार घोर,
अङ्गे आमार देबे ना अङ्गीकार ?

हाल्का हाउयाय वल्लम उँचू धरो।
सात समुद्र चौद्द नदीर पार—
हाल्का हाउयाय हृदय दु-हाते भरो
हुठकारिताय भेङ्गे दाओ भीरु द्वार।

पाहाड़ येखाने हाल्का हाउयाय कोने
हिमशिलापात झंझार आशा मने।
आमार कामना छायामूर्तिर वेशे
पाये-पाये चले तोमार शरीर घेँषे
काँपे तनुवायु कामनाय थरोथरो।
कामनार टाने संहृत ग्लेसियार।
हाल्का हाउयाय हृदय आमार धरो,
हे दूर देशेर विश्वविजयी दीप्त घोड़सोयार!

सूर्य तोमार ललाटे तिलक हाने
निश्वास केन वहितेओ भय माने!
तुरङ्ग तव वैतरणीर पार।
पाये-पाये चले तोमार शरीर घेँषे
आमार कामना प्रेतच्छायार वेशे।
चेये देख एइ पितृलोकेर द्वार!

जनसमुद्रे नेमेछे जोयार
मेरुचूड़ा जनहीन—
हाल्का हाउयाय केटे गेछे कबे
लोकनिन्दार दिन।

हे प्रिय आमार, प्रियतम मोर,
आयोजन काँपे कामनार घोर।
कोथाय पुरुषकार ?
अङ्गे आमार देबे ना अङ्गीकार ?

त्रस्त कम्पित कामना मेरी प्रकम्पित शून्य में,
नहीं दोगे क्या इन अंगों को अंगीकरण अपना ?

मन्द हवा में ऊँचा करो थरछा।
सात समन्दर चौदह नदी के पार—
लघु समीर से हृदय को भर लो दोनों हाथों,
दृढ़प्रतिज्ञ हो तोड़ दो भीरु द्वार।

यहाँ लघु हवा में पर्वत बुनते
हिमशिलापात, झंझा की आशा मन में।
मेरी कामना छाया मूर्ति के वेश में
पग-पग चलती सटती-छूती देह से तुम्हारी।
काँपती तनुवायु कामना से थरथर।
कामना के आकर्षण से शरीर है सघन ग्लेसियर।
थाम लो मेरा हृदय इस लघु हवा में,
हे दूर देश के विश्वविजयी दीप्त घुड़सवार!

सूर्य करता अभिषेक तुम्हारे भाल पर।
श्वास लेते भी फिर भय क्यों!
रह गया तुरंग तुम्हारा वैतरणी के पार।
पग-पग चलती सटती-छूती देह से तुम्हारी
प्रेतछाया के वेष में कामना मेरी।
यही तो सामने है देख लो पितृलोक का द्वार!

जन-समुद्र में आयी है ज्वार—
है मेरुचूड़ा जनहीन—
क्या जाने कब लघु हवा में कट गये
लोकनिन्दा के दिन।

हे मेरे प्रिय, प्रियतम मेरे,
त्रस्त कम्पित कामना मेरी प्रकम्पित शून्य में
कहाँ पुरुषकार?
नहीं दोगे क्या इन अंगों को अंगीकरण अपना ?

ओफेलिया

सबुओ एइ दुःसाहस। बसन्तेर सञ्चित सङ्गीत
यदि तुमि छिड़े दाओ, मेखे दाओ जियानो कुसुम,
शीतल यात्रार छाया फेले दाओ, दूर्वादल घूम
यदिइ ज्वालिये दाओ दीप्त लघु कैलासेर दीते,
सबुओ एइ दुःसाहस, सबु आज करे याब गान।

तुमि येन एक परदाय-ढाका-बाड़ि
आमि अघ्रान-शिशिरे-सिक्त हाओया—
विनिद्र ताइ दिन रात घूरि फिरे।

उदासीन देखें आकाशेर गाये मेघेरा छड़ाय सोना,
कपाट आमार गृहहारा, क'रे छायापथे आनागोना।
हृदय तोमार धुलोके बेंधेछे बासा?

झोड़ो हाओया छोंड़े कालो-कालो बुनो मेघ
चैती पूर्णिमा के।
आमि ये तोमाय भालोबासि से कि ताइ शुधु ओफेलिया?

नयने ज्वालाओ दीपशिखा।
आंधार एखाने जमे कालो-कालो पाथुरे पाहाड़।
रुदन्त वर्षार भिजा शीतवायु करे शवाहत
कृष्णवास वनानीके। शालतरु हारियेछे साड़।
रन्ध्रहीन आर्तनादे ए-आंधार हेडिसेर मतो
हृदय धरेछे चेपे। वह्नि तव दिक् दीपशिखा।
तुल दाओ छिड़े दाओ जीवनेर कृष्ण यवनिका।

ओफ़ेलिया

फिर भी यह दुःसाहस। वसन्त का संचित संगीत
यदि तुम छिन्न-भिन्न कर दो, तोड़ डालो, जीवन्त कुसुमों को,
पल्लव छाया को फेंक दो नदी पथ के किनारे, दूर्वादल को सुला दो
यदि जला ही दो दीस लघु कैलास के शीत में,
फिर भी यह दुःसाहस, फिर भी आज गाता ही जाऊँगा गीत।

तुम मानो एक परदे से ढका हुआ घर हो,
मैं अगहन-शिशिर सिक्त वात—
दिन-रात चक्कर काटता तुम्हारे चारों ओर, अनिद्र।

उदासीन देखो, बादल लेपते हैं सोना आकाश की देह पर,
मेरे शब्द हैं गृहहीन, वे चढ़ते-उतरते हैं आकाश-गंगा के पथ पर।
क्या द्युलोक में बसाया है तुम्हारे हृदय ने नीड़ ?

तूफानी हवाएँ फेंक मारती हैं जंगली काले बादलों को
पैनी पूर्णिमा के चाँद पर।
क्या इसी लिए कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मेरी ओफ़ेलिया ?

प्रज्वलित करो अपने नयनों के दीप।
अँधेरा यहाँ घनीभूत काला-काला पथरीला पहाड़।
रौद्री वर्षा की भीगी शीतवायु आघात कर
कृष्णवर्ण वनों को बनाती शोक-विह्वल। शाल-तरु हो जाते निष्पन्द।
इस अन्धकार का अनवरत आर्तनाद दबोच लेता है हृदय को
हेडिस की तरह। तुम्हारी नयन-दीपशिखा से मिले अग्नि-आलोक।
उठा दो, चीर फेंको जीवन की काली यवनिका।

रात्रि रयेछे पाशे—
तुषारशीतल कठिनोज्ज्वल क्षुरधार तरवारि
रात्रिओ आमि एका।

शरतेर शादा सामकाखुशिर मेघ—
पृथिवी पाठाय कारोर निमन्त्रण—
निर्घोष, निर्घोष।

पथदीघिर पाड़े
आश्विने गाँथा गान ये आमार कुचि कुचि क'रे छिंड़े
भासाले निथर जले।
आमारइ हृदय निथर गभीर नील से पथदीघि।

मुखर स्रोत बहिया याय माताल अभियाने—
स्तब्ध श्वेत बालुचरेर द्वीप।
जीवने से कि पेयेछे यति ? शान्ति तार गाने।
आमार मन भोलाले, ओफेलिया।

नील रहस्य नयने घनाय तार—
तुषार शिखर प्राचीरेर माझे
स्निग्ध गभीर दीघि।

निये एले हाते ऐन्द्रजालिक माया,
श्यामल घूमेर कोमल स्वप्ने बोना।
जेगे देखि मोर पृथिवीओ गेछे ऊड़े।

क्रन्दसी बुझि तोमाकेइ घिरे छड़ाल धारा।
कबे हृद भेङ्गे आवर्त हबे मन्दाकिनी ?
से-प्रपाते होक् आमार अपसुदीक्षा सारा।

मरणे दुँहे करिनि जय, जीवने बाहुडोरे

रात्रि है मेरे पार्श्व में—
तुषार शीतल कठिनोज्ज्वल तेज धार तलवार
रात यह और मैं एकाकी ।

शरत् के श्वेत अकारण-मुदित बादल—
पृथ्वी भेजती कास फूलों का निमंत्रण—
निर्घोष, हाँ : बड़ा निर्घोष ।

पद्म-सरोवर के तट पर
आश्विन में गूँथे हुए मेरे गीतों को टुकड़े-टुकड़े कर
बहा दिया तुम ने उन्हें स्थिर पानी पर
मेरा ही हृदय स्थिर वह गहरा नीलाभ पद्म-सरोवर ।

मुखर-स्रोत मत्त अभियान में बहता चलता—
स्तब्ध है श्वेत बालुचर का द्वीप ।
जीवन में क्या उसे मिला विराम ? उस के गीतों में है शान्ति ।
तुम ने मुझे किया है मन्त्रमुग्ध, ओ ओफ़ेलिया ।

उस के नयनों में है घनीभूत नील रहस्य—
तुषार-शिखर प्राचीर के बीच
एक शीतल गहन सरोवर ।

[illegible] आयीं तुम अपने साथ ऐन्द्रजालिक कुहेलिका,
घनी नींद के कोमल स्वप्नों से बुनी हुई ।
देखा जगने पर अदृश्य हो गया है वह पहचाना संसार ।

स्वर्ग मर्त्य शायद तुम्हें घेर कर ही है प्रवाहित ?
सरोवर कब तोड़ कर आवर्त बन जायेगा मन्दाकिनी ?
उस प्रपात में होगी मेरी अप्सुदीक्षा का अन्त ।

हम दोनों नहीं कर सके विजितमृत्यु को जीवन के बाहु-बल से

अतनुरति बाँधिनि आजो मोरा।
विदायरवि-रक्तालोके, शिशिर-सित गोरे
अनिर्वाण तबुओ पथे घोरा।

देवयानी! साँझे तोमार प्रणाम माझे
क्लिष्ट आमार दिवसेर क्षमा याचे
शापमोचनेर सुरभि सुरेर पाके-पाके—एइ साधना आमार।

मुक्ति-इशारा नयने तोमार दूरविङ्ग नभोविहार।
शान्ति-तुषार मुठिते तोमार, छड़ाओ वारेक वृष्टिधारे।
हृदय छड़ाओ आकाशे, जीवन होक तुषार।

प्रत्यर्पिता कुसुमे छाय, वैतरणी पारे
छड़ाय आहा! कोमल नील घुमेर आवाहन।
लोलुप तबु द्विधाय कार आविर्भाव-आशे
प्रान्तरेर प्रान्ते धाय भिक्षु देह-मन।

उद्धत प्रेम उद्धृत हाते आसो।
सन्ध्या-आकाशे वैशाली हासे
मरण-मायाके हानो।

एनेछिले वटे हासि।
मेघेर रेशमी आड़ाले देखेनि
वज्रेर याओआ-आसा।

अमरावतीर दैव प्राचीर धुरमार ह'ले मर्त्यलोकेइ!
धूमकेतु एइ विराट दाहन विश्व आमार तोमार चोखेइ
पेयेछिल तार परमागति॥

महाश्वेता

नयने तोमार मदिरेक्षण माया ।
स्तनचूड़ा दिलो क्षीण कँटितटे छाया ।
स्वप्न-सारथि, तोरण कि याय देखा ?
अमरलोकेर ईशारा तोमार चोखे,
क्रान्तिवलय मिलाय सुमेरुलोके ।
आज कि आमाके भूलेछ महाश्वेता ?

अमृतेर झारि मदिर ओष्टाधरे
स्मृति-विस्मृति झरतेर धारा झरे ।
आज कि आमाके भूलेछ महाश्वेता ?
शरीरे तोमार अलकनन्दा गान ।
अच्छोदनीरे करो तुमि येइ स्नान
स्वप्नवाणीते शिहराय क्रन्दसी ।

भास्वर तव तनुते अमृत ज्योति,
प्राणसूर्येर एकान्त संहृति
क्रान्तिवलये शिहराय क्रन्दसी ।
उत्तर करे मुद्रित वराभय,
तामसीके करो खण्डन, करो जय ।
स्वप्नसारथि, तोरण कि याय देखा ?

पश्चाते याय मरण-चाँदेर आलो
दिगन्त-फणा, तुहिन, पाण्डु कालो ।
विस्मरणीर वालुतीर याय देखा ?

महाश्वेता

नयनों में तुम्हारे मदिरेक्षण माया।
स्तनशिखा करती क्षीण कटितट पर छाया।
स्वप्न-सारथि, तोरण-द्वार भी कभी दीखा है ?
अमरलोक का इंगित है तुम्हारे इन नयनों में,
क्रान्तिवलय सुमेरु लोक में होता हूँ विलीन।
मुझे क्या याद नहीं कर पा रही हो, महाश्वेता ?

अमृत की झारी है तुम्हारे ओष्ठाधर मदिर
मानो स्मृति-विस्मृति झरती शरत्-धार।
मुझे क्या भूल गयी महाश्वेता आज ?
हिमगिरि करता गान तुम्हारी देह में।
निर्मल सरोवर में जब करती हो तुम स्नान
अनागत के भावी स्वप्न में सिहर उठते पृथ्वी-आकाश।

तनु में तुम्हारे भास्वर होती अमृत ज्योति,
निविड़ आकुलता प्राण-सूर्य की।
क्रान्ति-वलय में सिहर उठते पृथ्वी-आकाश।
तुम्हारे उत्तर-कर में है मुद्रित अभय की वाणी,
करो खण्डित तामसी को, करो इसे जय।
हे स्वप्न-सारथि, तोरण-द्वार भी कभी दीखा है ?

संहारक चाँद का प्रकाश करता पीछा मेरा
दिगन्त है एक नाग-फन, तुहिन-पाण्डु, कृष्णकाय।
वैतरणी का बालूतट दिखाई देता है क्या ?

हे वीर अतनु, नाचिकेत धनु टानो,
देह-दुर्गेर रक्षाय मोरे आनो—
तोमार प्राकृत बाहुते, महाश्वेता ॥

हे वीर कामदेव, अपना मृत्युंजय धनुष खींचो,
देह-दुर्ग के भीतर मुझे सुरक्षित कर लो
अपने प्रकृत आलिंगन में बाँध लो मुझे, महाश्वेता ॥

क्रेसिडा

स्वप्न आमार कविता,
अमावस्यार देयालि,
धूम्रलोचन निद्राहीन
माघ-रजनीर सविता।

हृदये आमार खेयार यात्री वैतरणीर पार।
कान्तारीहीन वालुकावेलाय चोख पुड़े मरे दूरे।
हृदय आमार छापिये उठेछे वातासेर हाहाकार।

दिनगुलि तुमि तुले निले अञ्जले।
घालुचरचारी दृष्टिते झरे सान्निध्येर धारा।
रात्रिओ चाओ? श्रावणेर धाराजले
मुखर हृदय तालीवनदीघि कल्लोले अविराम।

क्रेसिडा! तोमार चमकानो चोखे चमकाय वराभय।
तोमार बाहुते अनन्त-स्मृति कुङ्कुमेर छोप।
तोमातेइ करि मत मरणे जय।

महाकाल आज दक्षिण कर प्रसारे आमारइ दिके।
भीरु दुर्बल मन!
दैवेर हाते हात बेंधे याओया महासिन्धुर डाके!
सर्व समर्पण!

हेलेनेर प्रेमे आकाशे वातासे झंझार करताल
द्युलोके भूलोके दिशाहारा देवदेवी।

क्रेसिडा

स्वप्न मेरी कविता है,
अमावस्या की दीपावली,
धूम्रलोचन, निद्राहीन
माघ-रजनी की सविता है।

हृदय है मेरा वैतरणी के घाट का यात्री।
दूर के बालू-तट पर जा लगती है जलती आगें चालकहीन।
मेरे हृदय में निकलता है हवा का हाहाकार।

मेरे दिनों को तुम ने आँचल में भर लिया
मेरी बालू-तट पर बिखरती दृष्टि में झरती है तुम्हारे सान्निध्य की धार।
रातें भी चाहती हो क्या? श्रावण की जलधार में
मेरा मुखरित हृदय है तालीवन—सरोवर, अविराम कल्लोलित।

क्रेसिडा! तुम्हारी चौंकती आँखों में है अभय-वर की आभा,
तुम्हारी बाहुओं में निःशेष होती है ऋतुकृतम् की अनन्त संसृति।
तुम में ही विजित करता हूँ मैं मत्त प्रलय को।

महाकाल ने मेरे करों में फैलाया है अपना दक्षिण कर
रे भीरु दुर्बल मन,
भाग्य के हाथों बँधे हुए हो जाना है मुझे,
पुकारता है मर्त्यमृत्यु! कर दे सर्व-समर्पण!

हेलेन के प्रेम में समायी हूँ अम्बर-समीर में झंझा की झनकार।
द्युलोक-भूलोक में दिग्भ्रमित हैं देवी-देवता।

काल रजनीते झड़ ह'ये गेछे रजनीगन्धा-वने ।

वैशाखी मेघ मेदुर हयेछे सुदूर गगनकोणे
कुरुक्षेत्रे उड़ेछे हाजार रथचक्रेर धूलि ।
स्वप्न-गोधुलि डुबे गेल खर-रक्तेर कोलाहले ।

लाल मेघ ठेले नील मेघ, नीले धोँया मेघेदेर भिड़
मेघे-मेघे आज कालो कल्किर दिन ह'ल एकाकार ।
विद्युत नेभे ईशानविषाणे, वज्रओ दिशाहारा ।
एलोमेलो पाखा झापटि' तबुओ उड़े कया क्रौञ्चडार ।

श्रान्ति आमार निये याय यदि वैतरणीर पार,
भविष्यहीन आँधार क्लान्ति काके देवो उपहार ?
एत मन्र जनहीनताय कोथाय से प्याण्डार ?

स्वसमुष्य से कोन देवतार द्विराचारी संभाषे
अमरावतीर समाहारी नारी हेलेनेर वालालोल !
आमारइ दोफाली जेवली केवल झरे जवासंकाशे

सूर्यलोकेर धाराय जेगेछे जीवनेर अङ्कुर ।
आत्मदानेर उत्संइ जानि उज्जीवनेर आशा ।
असूर्यलोके वन्दी, कुमारी, तोमातेइ खुँजि भाषा ।

समयेर थलि शतच्छिद्र, विस्मृतिकीट काटे ।
प्राणोपासनार पूजारी ताइ तो तोमार शरण मागि ।
प्राणहन्तारा रक्तरोले चले टुयेर माठे ओ वाटे ।

उपसीआवाद धूसर करेछे मरणेर आनागोना ।
हेलेनेर बुके शवसाधनार विश्राम आर नेइ ।
आमार हृदय-पटाकाशे शुधु जीवनेर आराधना ।

ट्रयेर प्राचीर भङ्गुर केन ? कोन हेलेनेर
अमर रूपेर प्रखर आवेगे विपुल विश्व हारालो दिशा
लोकोत्तर ए-रूपसी वा केन ? लोकायतिक ए-मरणतृषा ?

जानि, जानि, एइ अलातचक्रे चक्रमण ।
सोरप्रासपारो बलिनाको ताइ कथा ।
क्रेसिडा ! आमार प्रचण्ड आकुलता—
जिजीविषु प्रजापतिर विभ्रमण ।

सोनालि हासिर झरना तोमार ओष्ठाधरे ।
प्राणकुरङ्ग भङ्गे छड़ाय चपल माया ।
मुखर से-गान भेंगे गेल । आज स्तब्ध तमाल ।
हाल्का हासिर जीवने कि एल फसलेर काल ?

एइ सबे भोरबेला ।
हे भूमिशायिनी थिउन्नि ! आर कि
कोनो सान्त्वना नेइ ?

रजनीगन्धा दियेछिले सेइ राते,
आजो तो से फोटे देखि—
मदिर अधीर राते तन्वी फूल—
रजनीगन्धा, विराग जाने ना से कि ?

दु:स्वप्नेओ प्रेम करेनि ए आशा ।
शत्रुशिविरे कुमारीर नव चोखे, मुखे, सारा शरीरे मग्न भाषा !
हे ग्रीक नागर ! ट्रयके हारालो आजइ !

कालेर विराट अट्टहासिर छाया
ढेके दिलो ढेके तोमारओ मरण-माया—
हे मातरिश्वा, महाशून्येर सुखे

तुड़ि दिये याइ तोमारओ प्रबल मुखे ।

तुमि भेवेछिले उन्माद क'रे देबे ?
उद्वायु आजो हयनि आमार मन
लोकायत मोर स्वेच्छावर्मे लेगे
वर्शा तोमार ह'ये गेल खान्-खान् ।

बुद्धि आमार अपापविद्धमस्नाविर ।
जड़ कबन्ध अन्ध कर्म फुत्कारे करि नमाचार
प्राक्तन-पाश्चात्त्य मागि ना, मन तुषार ।

पाहाड़ेर नील एकाकार ह'ल धूसर मेघेर स्रोते
पाँच पाहाड़ेर नील ।
चातासेरा सब बासाय पालालो मेघेर मुष्टि ह'ते ।
स्तब्ध निथर सात-मायरेर बिल ।

शिवा ओ शकुनि पलातक, जानि, भाग्य तो कृकलास ।
कुरुक्षेत्रे इन्द्रप्रस्थ, परीक्षितेरइ जय ।
शरत्-माधुरी लूट क'रे फिरि, जय जय द्रुमलास !
उल्लासे गाय पाले-पाले क्रीतदास ।

विजयी राजार दानसत्रेर श्रावणप्लावने माझे
पुरजन यत गृहहीन यत बुभुक्षु भिक्षुक ।
हायनार हासि आसे स्मृतिपटे—
बेहिसाबी क्रेसिडा से !

तुमि च'ले गेले मरणमारीच मायावीर डाके मूक
बधिर ओष्ठाधरे ।
तारपरे एल रणमन्थने दूर विदेशेर नागे ।
कालो सन्ध्याय दिले श्वेतबाहु दुटि—
स्मरण तोमार हाने आजो तरवारि ॥

सप्तपदी

१

सोनालि लग्ने देखा ह'ये गेल
सोनाखचा बाँका रङ्गीन पथे ।
एलोमेलो दिने आनमने चलि,
चड़िनि विजये मुखर रथे ।
तबुओ छड़ाले आयत नयन;
सोनालि आकाश छड़ाले नीले ।
शाल अरण्ये ओ ऋजु शरीरे
खुँजे पाइ दूर हठात्-मिले ।
मिशुकवने ये-हासि छड़ाले,
शुधु अकारणे पुलकमयी ।
से-आकाशे देखि आपनाके छाड़ा
साधनार दीपे, क्षणिका अयि ।

२

पान्थ प्रेमेर एइ गुरुभार
तुमि छाड़ा बलो वइबे के ?
तोमार आङिना दिये भिजे याइ
द्वार खोलो बँधु ताइ देखे ।
नदीते जोयार खेया-पारापार
बन्ध हयेछे, हाट लोपाट ।
शुधु आछे मेघे वज्रआवेगे
आकाश-छड़ानो विजन वाट ।
एइ दुर्योगे घर के बाहिर,
तुमि छाड़ा बलो, बाहिर घर

सप्तपदी

१

सोनालि लग्ने देखा ह'ये गेल
सोनाखचा बाँका रङ्गीन पथे ।
एलोमेलो दिने आनमने चलि,
चड़िनि विजये मुखर रथे ।
तबुओ छड़ाले आयत नयन;
सोनालि आकाश छड़ाले नीले ।
शाल अरण्ये ओ ऋजु शरीरे
खुँजे पाइ दूर हठात्-मिले ।
किंशुकवने ये-हासि छड़ाले,
शुधु अकारणे पुलकमयी ।
से-आकाशे देखि आपनाके छाड़ा
साधनार शेषे, क्षणिका जयि ।

२

पान्थ प्रेमेर एइ गुरुभार
तुमि छाड़ा बलो बइबे के ?
तोमार आङिना दिये भिजे याइ
द्वार खोलो बँधु ताइ देखे ।
नदीते जोयार खेया-पारापार
बन्ध हयेछे, हाट लोपाट ।
शुधु आछे मेघे वज्रआवेगे
आकाश-छड़ानो विजन बाट ।
एइ दुर्योगे घर के बाहिर,
तुमि छाड़ा बलो, बाहिर घर

सप्तपदी

१

स्वर्णिम लग्न में हुआ मिलन
स्वर्ण खचित बंकिम रंगीन पथ पर।
अस्तव्यस्त दिन में अनमना चला जा रहा था,
विजयी मुखर रथ पर बैठा नहीं था।
फिर भी तुम ने आयत नयन बिछा दिये,
आकाश में सुनहली नीलिमा फैल गयी
शाल अरण्य और ऋजु शरीर में
अचानक मिलन ने दूर का ठिकाना बता दिया।
किंशुकवन में केवल अकारण ही पुलकमयी
तुम ने हँसी बिखरा दी।
उस आकाश में अपने अतिरिक्त दिखाई पड़ी
साधना की समाप्ति पर, क्षण भर के लिए तुम प्रेयसी।

२

पान्थ प्रेम का यह गुरुभार, कहो
तुम्हारे अतिरिक्त कर सकता है कौन वहन ?
तुम्हारे आँगन से भीगता जाता हूँ
देखते ही खोलती हो निज द्वार तुम प्रिये।
नदी में घहरायी है बाढ़,
घाट वाली नाव बन्द है मेला निःशेष।
है केवल गाँव का शून्य निर्जन पथ
बादलों और वज्र के आवेग में आकाश की ओर प्रसारित।
इस दुर्योग में, बोलो
बनायेगा कौन घर को विश्व,

केड्-बा करबे ? तोमारइ हृदय
आकाशेर नीड़, नदीर घर।
आत्मदानेर से नील आकाशे
विराट शून्य बाँधबे के
तुमि छाड़ा बलो ? तोमारइ हृदये
थमकाइ थेमे, ताइ देखे।

३

तोमार मनेर शुभ्र शिखरे खुँजेछि बासा
नीड़-आकाश।
ए निरावलम्ब जनता-सागरे चुकेछे भाषा
रुद्धश्वास।
छिन्न ढेउयेर नीलिम छन्दे चिनेछे मन
आपन सीमा।
स्वयम्भरेर आत्मसाधना ह'ल आपन
भाँटाय ढिमा।
अमारजनीर मदिराय नेइ नीड़-आकाश
जेनेछे मन।
तोमातेइ पाइ प्राणसत्तार नीलिमाभास
ताइ आपन॥

× × ×

और विश्व को घर, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन ?
तुहारा प्रेम ही है आकाश-नीड़
नदी बीच उभरा द्वीप।
आत्मदान के उस नीलाभ में
विराट् शून्य को तुम्हारे अतिरिक्त
बोलो बाँधेगा कौन ? अन्ततोगत्वा ठहरता हूँ
तुम्हारे ही हृदय स्थल पर—पूर्ण भिन्नता से।

३

तुम्हारे हृदय के शुभ्रशिखर में ढूँढा है स्थान
नीड़-आकाश।
इस निरालम्ब जनसागर में बहना हुआ है समाप्त
रुद्ध श्वास।
छिन्न लहरों के नील छन्द मे पहचान ली मन ने
सीमा अपनी।
अपनी ही दुर्बलता से मन्थर स्वयम्भर की
आत्मसाधना।
मन ने है जाना अमा-रजनी की मदिरा में नहीं है
नीड़-आकाश।
तुम अपने हो, इस लिए कि तुम में ही पाता हूँ
प्राणसत्ता का नीलिमाभास ॥*

× × ×

* केवल तीन पद संकलित एवं अनूदित।

ए जनतार

कत बार एल कत ना दस्यु । कत ना बार
ठगे-ठगे हूँलो आमादेर कत ग्राम उजाड़
कत बुलबुलि खेल कत धान,
कत मा गाइल बर्गीर गान,
तबु बेँचे थाके अमर प्राण
ए जनतार—
कृषाण, कुमोर, जेले, माझि, ताँति आर कामार ।

अमर देशेर माटिते मानुष अजेय प्राण,
मूढ़ मृत्युर मुखे जागे ताइ कठिन गान ।
दीर्घकालेर घाराजले जले
चेतनार पलि सानालि फसले
ए देशे बन्धु कतकाल फले ।
माटिर टान
दिके दिके ज्वले, पुड़े छारखार तानाका-सान् ।

हे बन्धु जेनो, आज जबे खोले मुक्तिद्वार,
देखो आर दरो भेदाभेद शुधु भीरुता छार ।
एइ ये प्रवीण हिन्दुस्थान
कत सभ्यता आकण्ठे पान,
असिदुर्गम स्तये प्रयाण
कत ना बार
करेछ, आज के घरेछे चेतनाहर कुठार ।।

इस जनता का

कितनी बार आये कितने डाकू। कितनी बार
ठगों ने हमारे गांवों को दिया उजाड़,
कितने बुलबुलों के दल खा गये धान,
कितनी माताओं ने गाये 'बर्गी-गीत',
फिर भी रहा जीवित यह अमर प्राण
इस जनता का—
किसान, कुम्हार, मछेरा, माझी, जुलाहा और लुहार।

इस अमर देश की मिट्टी में मनुष्य हैं अजेय प्राण,
मूढ़ मृत्यु के स्वर में जगता इसी लिए अक्षुण्ण गान।
यहाँ दीर्घकाल से बहते धाराजल पानी, और
चेतना की मिट्टी में खिलती है स्वर्ण-वर्ण फ़सल,
इस देश में, दोस्त, उगती है वह कितने अपार-स्वप्नों के बीच।
जब कि तपी धरती के आकर्षण से
अनाचार की अग्नि से लाल, भस्म कर दिया है उस ने खानाका-खानों को।

याद रखो, अय मेरे दोस्त, आज जब खुलता मुक्तिद्वार,
देशों में, लोगों में, भेदाभेद केवल भीरुता, बेकार।
यह जो प्रवीण हिन्दुस्तान
कितनी सभ्यता का किया है आकण्ठ पान,
असि-दुर्गम लक्ष्य की ओर किया है प्रयाण
पता नहीं कितनी बार
किया है प्रयाण, आज उठाया है विरोध में
उसी ने ही चेतना-खर-कुठार॥

मफस्वले

चापीरा फिरेछे घरे, शून्य क्षेते, खामारे ईंदुर,
सोनालि सूर्यास्त शेष, गोधूलिर विच्छिन्न विषाद
पाहाड़े जमाट, छोटो नदीपथे ग्रामेर वधुर
रोमाण्टिक छवि नेइ, थेमे गेछे गानेर निखाद।
पाहाड़ेर दिके उड़े शब्दमय अदृश्य बादुड़।
क्षाड्लोय ब'से एका, नामहीन प्रत्याशाविधुर।

सामने छड़ानो रात्रि, अन्तहीन अन्धकारे नील
अस्पष्ट आलोकसत्ता, अन्धकारे मरमी मूर्छना
आघाते-आघाते प्रेमे प्रच्छन्न विलासे हाने मिल,
संहत पुलके हाने नक्षत्रेर कतइ गुच्छ ना!
सामने रात्रिर नीले छेये याय विराट निखिल,
ए-विराटे निःसङ्गेर डुबे याओया बुझिवा तुच्छ ना!

निःसंग स्वार्थेर रात्रि मिशे याय बाहिर विराटे।
आकाशे-आकाशे देशे-देशान्तरे दिन-रात्रि रटे
दरिद्र व्यर्थेर ग्लानि अन्धकारे स्तिमित आभाय।
परिपूर्ण जीवनेर रक्तप्लुत विच्छिन्न निशान।
स्वप्नेरा मरिया गये दीपावली कखन निभाय—
जेगे थाके स्मितनेत्र नीलकण्ठ निर्मम ईशान॥

मुफ़स्सल में

खेतिहर घर लौट आये खेतों से, शून्य खेतों में घूमते चूहे
स्वर्णिम सूर्यास्त हुआ समाप्त, गोधूलि का विच्छिन्न विषाद
प्रस्फुटित सघन पहाड़ पर, छोटे नदीपथ पर ग्राम-वधू की
रोमानी तसवीर पड़ती नहीं दिखाई, रुक गया है गीत-निषाद।
पहाड़ की ओर फड़फड़ाते उड़ते हैं अदृश्य चिमगादड़।
बँगले में बैठा हूँ अकेला, किसी नामहीन प्रत्याशा में डूबा।

सामने फैली हुई है रात, अन्तहीन अन्धकार में नील।
अस्पष्ट आलोक सत्ता है अन्धकार में उच्छ्वसित—करती है
गीत-वितान की गूँजती मूर्च्छना से आघात पर आघात, और
निक्षेपित करती है तारक-गुच्छ प्रच्छन्न आनन्द-विलास में मग्न !
सामने फैली नीलाभ रात्रि में विराट् निर्विघ्न हो जाता है विलीन
और निःसंगता डुबो लेती है मुझे अपनी प्रत्यक्ष विराटता में !

मेरी नि:संग स्वार्थ की रात इस बहिर्विराट् में होती विलीन।
जहाँ देश-देशान्तर के आकाश में दिन-रात फैलती
दरिद्र व्यर्थता की ग्लानि, अन्धकार स्तिमित आभा में।
परिपूर्ण जीवन का रक्त-मूर्त विच्छिन्न निशान।
मेरे हताशा-स्वप्न भय से तारक ज्योति को कर देते हैं मन्द—
जागता रहता केवल स्मितनेत्र नीलकण्ठ निर्मम ईशान॥

भाग्नीय विमानवाहिनी—(वेनूर जन्य)

कैशोरेर धीर
एमनो छड़ानो पाखे ।
जीवनेर स्वप्नलोके
अविश्राम आनागोना तार;
अवज्ञाकठोर
मृत्युर स्वार्थेर द्विधा
जाति, वर्ण, श्रेणी—यत हिसाबीर विविध कौशले
ठग् आर वणिकेर दले
ताके तो टानेनि ।
प्राणेर उल्लासे
नाइ तो से भासे अखण्ड आकाशे,
सत्तार सुनीले तार मुक्त आनागोना ।
मृत्यु आज आत्मघाती मृत्तिका-विलासे ।
प्राण तार स्वतः उद्भासे,
मेघ ह'ते मेघान्तरे उन्मुखर यात्रा तार;
सूर्य जाने भाषा तार, सूर्य हाने गाये तार
उल्लसित लावण्येर भयशून्य सोना ।
से कि जाने, किशोर कुमार,
नव-जीवनेर आशा अङ्कुरित आकस्मिकताय
हयतो-वा अन्ध अपघाते ?
से कि जाने स्वेच्छावरे प्रेय आर श्रेय ?
मृत्युहीन चिदम्बरे से तो जाने आदिगन्त
जीवनेर अनिर्वाण गति,
से किशोर वीर !
भङ्गुर दुःखेर स्तूपे

भारतीय विमानवाहिनी—(वेनु के लिए)

किशोर का नशा
अभी तक आँखों में है फँसा।
जीवन के स्वप्नलोक में
निरन्तर है उस का आना-जाना,
कठोर मृत्यु
अपनी स्वार्थ भरी द्विविधा लिये—
विभिन्न जाति, वर्ण, श्रेणी के सब सतर्क लोगों के विविध कौशल के बीच
नहीं खींच ले जा सकी उसे
ठग और व्यापारियों के दलों में।
प्राणोल्लास में
इसी लिए वह तैरता अखण्ड आकाश में,
अपनी सत्ता के सुनील में है उन्मुक्त उस का आना-जाना।
मृत्तिका-विलास में आज जब मृत्यु है आत्मघाती,
प्राण है उस का स्वतः उद्भासित,
मेघ से मेघान्तर तक उन्मुखर है उस की यात्रा,
जानता है केवल सूर्य उस की यात्रा की माप, फैलाता है वह शरीर पर
उल्लसित लावण्य का भयशून्य स्वर्ण।
वह किशोर कुमार, जानता है क्या,
नवजीवन की आशा अंकुरित होती है आकस्मिकता में?
अथवा, शायद अन्य-अपघात में?
वह क्या जानता है कि उस के स्वेच्छाचरण में ही प्रेय आज श्रेय है?
अपने मृत्युहीन चिदम्बर में वह जानता है
आदिगन्त जीवन की अनिर्वाण गति,
किशोर, वह वीर!
भंगुर दुख के स्तूप पर अपने हाथों से

नूतन चेतनाचैत्य रचना करे कि दुइ हाते,
विप्लवी पाखाते, सोनालि ईगल तार,
चोखे सूर्य, पाये तार कर्णफुलि मौन, इरावती
प्रतीक्षाय स्थिर ?

रचता है वह नया चैतन्य चैत्य,
पंखों में क्रान्ति, स्वर्ण सुपर्ण पर आसीन,
उस की आँखों में सूर्य, पैरों में है नदी कर्णफुलि मौन,
ईरावती बहती प्रतीक्षा में स्थिर !

सात भाइ चम्पा

चम्पा तोमार मायार अन्तनेइ
कत ना पारुल राङ्गानो राजकुमार
कत समुद्र कत नदी पार !
विराट बाङ्गला देशेर कत ना छेले
अवहेले सब सकल यन्त्रणाइ —
चम्पा कखन जागबे नयन मेले ।

चम्पा, तोमार प्रेमेइ बाङ्गला देश
कत ना शाङ्गन रजनी पोयालो बलो ।
गौरी शृंग माथा हेंट टलोमलो,
निषिद्ध देशे दीपङ्करेर शिखा
चीने ज्वले, हय मङ्गोलियार लेखा,
चम्पा, तोमाय चिनेछिल सिंहलओ ।

तोमाके खुँजेछे जानो कि रूपके नूपे
अश्वेर खुरे लाङ्गलेर फला टेने
हातुड़िर घाये, कास्तेर बाँका शाने,
भाटियाली गाने, कपिलमुनिर द्वीपे;
कलिङ्गे आर कङ्कणे गुर्जरे
चम्पा, तोमार सात भाइ गान करे ।

श्याम-कम्बोज तारा बुझि टाने दाँड़,
नीलकमलेर देशे रेखे आसे हाड़
बहु चाँद बहु श्रीमन्त सदागर,
चम्पा, तोमारइ पारुल मायार लोभे

सात भाई चम्पा

चम्पा तुम्हारे स्नेह का अन्त नहीं,
पता नहीं कितने पाटलवर्ण राजकुमार
करते आये कितने नदी-समुद्र पार।
विराट बाड्ला देश के कितने लड़के
अवहेलित सहते यन्त्रणा सब
चम्पा जागेगी कब, कर प्रसारित नयन।

चम्पा, तुम्हारे प्रेम मे ही बाड्लादेश ने
बितायी पता नही कितनी सावन रातें।
गौरीशृग नतमस्तक चल-विचल,
निपिद्ध देश मे जलती शिखा दीपंकर की
चीन मे जलती, मंगोलिया मे फैलती;
चम्पा, तुम्हें पहचाना था लंका ने भी।

जानती हो तुम्हे ढूँढते कृपक नृप
अश्व की टापों मे, हलकी जोत में,
हथौड़ी की चोट मे, हँसिया की बाँकी धार में,
भाटियाली गीत मे, कपिलमुनि के द्वीप में,
कलिंग और कोंकण गुजरात मे
चम्पा, तुम्हारे सातों भाई गाते गीत।

श्याम-कम्बोज मे शायद वे चलाते नौका,
नीलकमल के देश मे रख आते अस्थियाँ,
बहुत से चाँद, बहुत से श्रीमन्त सौदागर
चम्पा, तुम्हारे ही पाटल स्नेह के लोभ मे

बाहिरके घर आपनके करे पर,
र्वलि हासे, आसे यवद्वीपेर साड़ ।

तोमार बाहुर निर्देश देखे क्षोभे
कत प्राण गेल, कतजना निशि डेके
अन्ध आवेगे वैतरणीते डोबे ।
चम्पा, तोमार अविनश्वर प्राण
ए कोन हिरणमायाय रेखेछ ढेके,
खुले दाओ मुख, रौद्रे ज्वलुक गान ।

कड़िर पाहाड़े चम्पा, तुमि तो नेइ,
काञ्चनमाला जाने ना तोमार खेइ;
तबुओ तोमाय खुँजे मरे सारा देश—
घोचाओ चम्पा, दुस्थ छद्मवेश,
ए माह भादरे भरा बादरेर धोये
चकिते देखाओ जनगणमने मुख—
मुक्ति ! मुक्ति ! चिनि से तीव्र सुख,
सात भाइ जागे, नन्दित देश-देश ।।

विदेश के घरों में अपने को बनाते पराया
बाली हँसता, यवद्वीप में फैलती संचेतनता।

तुम्हारी बाहु के निर्देश पर क्षोभ से
कितनों के प्राण गये, कितने ही रात की हाँक पर
अन्ध-आवेग में वैतरणी में डूब गये।
चम्पा, अविनश्वर प्राण को तुम ने
किस मृगतृष्णा से रखा है आवृत,
हटा दो आवरण धूप में जलते रहें गीत

कौड़ियों के पहाड़ में, चम्पा, तुम तो नहीं हो
कांचनमाला को तुम्हारा पता नहीं
फिर भी ढूँढती मारी-मारी फिरती सारे देश में—
चम्पा हटा दो, यह जीर्ण छद्मवेश,
इस भराभर भादों में, भरी वर्षा के अन्त में,
क्षण भर के लिए दिखाओ जनगणमन को अपना मुख।
मुक्ति, मुक्ति ! परिचित हूँ उस तीव्र सुख से,
जाग जायें, सातों भाई नन्दित हों देश-देशान्तर ॥

মৌভোগ

জন্মে তাদের কৃপাণ শুনি কাস্তে বানায় ইস্পাতে,
কৃপাণের কও পেঁড়েছে বাজু বানায়।
যারা তাদের কঠিন পথে রাখিবাঁধা কিশোর হাতে—
রাক্ষসেরা বৃথাই রে নখ শানায়।

নীলকমলের আগে দেখি লালকমল যে জাগে,
বৈরী হাতে নিদ্রাহারা একক তরোয়াল,
লাল তিলকে ললাট রাঙা, ওপার রক্তরাগে
—কার এসেছে কাল ?

ঘোর-ডাকাতে মুখোশ পরে, রাক্ষসেরা ছাড়ে
ঘোরাই মাল, ঢাকে কালো কানায়।
মদিয়া মত রানীর শ্রান্তি কঙ্কালী পাহাড়ে
মড়ক-পূজা নরবলিতে জানায়।

এদিকে ওড়ে লালকমলের নীলকমলের হাতে
ভায়ের মিলে প্রাণের লাল নিশান।
তাদের কথা হাওয়ায়, কৃপাণ কাস্তে বানায় ইস্পাতে
কামারশালে মজুর ধরে গান ॥

मधु भोग

जन्म से ही किसान गढ़ता हँसिया इस्पात से,
उस की बहू बनाती पहुँची और बाजूबन्द।
कठिन पथ पर चलना उन्हें पड़ता
किन्तु राखी बँधी होती किशोर कलाई में उन की
व्यर्थ ही राक्षस करते तेज नाखून।

देखता हूँ, नीलकमल से पूर्व लालकमल जाग्रत् हुआ,
थमी है जगे-हाथों एक-एक तलवार।
लाल तिलक से शोभित ललाट, उषा के रक्त-राग में,
—आ पहुँचा काल किस का ?

चोर-डाकू ओढ लेते नकाब, दानव छोड देते
सचकाया माल, कालिमा उफनने लगती
हताश हो, रानी के गण, कंकाल के शिखरों पर
देते हैं नरबलि, पूजा करते महामारी की।

इधर देखो, लालकमल, नीलकमल की भुजाओं में
जीवन की रक्त-पताका फहराने लगी,
भ्रातृभाव फैल उठा।
गूँजने लगी सर्वत्र उन की गाथा।
किसान गढ़ता है हँसिया इस्पात से,
मजूर गाते हैं मिल कर कलों में, कारखानों में॥

छड़ा : लालतारा

जन्मे तोमार उठेछिल लालतारा,
बाहु तुलेछिल मृत्तिका अम्लान,
आकाशे आकाशे उन्वेथवा हेषा
कालपुरुषेरा धरेछिल एक तान।

रुद्रेर हासि प्रेमेर वह्नि उमार
तोमार बाहुते मुद्राय टलोमलो
तोमाय जाने ना एरा तो केउ कुमार!
कत राक्षसी माया ना छड़ाय बलो।

बाधाक् दाङ्गा, राङ्गाक् रक्ते माटि,
गर्दान दिक गाँये गाँये घाटे हाटे,
शहरे पाहाड़े बाँधुक ना शत घाँटि
धूमकेतु यत तारार लालेइ काटे।

आकाशे बातासे घुरुक गुप्तचर
ताइ कि पक्षीराजेर थामबे ओड़ा?
माठे बाटे घोरे बरकन्दाज शत
ताइ थमकाबे तोमार प्राणेर घोड़ा?

युग युग धरे कालेर सागर सेंचे
वीरेर रक्ते मातार अश्रुजले
जययात्राके रुखबे के छले बले
अन्ध घोराय गड़खाइ कादा येचे?

लाल तारा

जन्म पर तुम्हारे उदित हुआ था लाल तारा
अम्लान धरती ने उठायी थी भुजा।
निरभ्र आकाश में भर गयी थी उच्चैःश्रवा की हेषाध्वनि,
सप्त कालपुरुषों ने उठायी थी तान।

रुद्र का हास, उमा के प्रेम की वह्नि,
सभी आन्दोलित हुए तुम्हारी बाहु-मुद्राओं में
वे अभी तुम से अपरिचित हैं, ओ कुमार!
चाहते हैं, फैलायें अपनी राक्षसी माया।

दंगे होने दो, माटी रँग जाये रक्त से,
देश भर में, गाँव-गाँव,
घाट-हाट उन्हें फैलाने दो मृत्यु
नगर में, पहाड़ों पर उन्हें बनाने दो शत-शत दुर्ग,
एक लाल तारा देख, नष्ट होंगे वे तमाम धूमकेतु।

आकाश में, अन्तरिक्ष में घूमते रहें गुप्तचर,
क्या रोक सकेंगे वे पक्षिराज की उड़ान!
मैदानों में, राहों में गश्त करें सैकड़ों बरकन्दाज
उस से रुक जायेगा क्या तुम्हारे प्राणों का अश्व।

दलदल से कितना हो माँगे वे कीचड़,
छलबल से जययात्रा प्रतिरुद्ध नहीं होगी।
युग-युग से कालसागर ने पथ प्रशस्त किया
—वीरों के रक्त से, माताओं के अश्रुजल से।

शुनेछि विदेशे मेते उठेछिल नदी,
राजार सेपाइ कादा दिये ताके रोखे,
मेङ्गे धाय बान, इतिहास निरवधि
टेमसेरइ मतो छूटेछे, के ताके रोखे ?

पडुक ना गुलि, उठुक ना शत कोड़ा
बाङ्लाय गाँये पाहाड़े कलकाताय,
तबुओ कुमार छूटेछे तोमार घोड़ा
तड़ित् ट्रामेर चेयेओ त्वरित पाये ।

दु चोखे तोमार धिकिधिकि लालतारा,
उत्तोलबाहु आगुनबाँधानो मुठा
देशविदेशेर राक्षस दिशाहारा
छुटेछे मरिया इल्लिदिल्लि ठूँटा ।

धूपाइ छड़ानो रक्तेर लालधारा,
गाँये माटे हाटे जन्मेर लालतारा
ज्वले ये तोमार पदक्षेपे छाटे
देशे देशे ज्वले दुरन्त पालसाटे ।

थोलेनि थोले ना तोमार घोड़ार खुर
प्राणे इस्पाते पिटानो से अभियान ।
तोमार बाहुते ताइ भीड बन्धुर
देशे दुर्जय गरजाय जयगान ॥

सुना था, विदेश में उमड़ उठी थी नदी
राजा के सिपाहियों ने रोकना चाहा कीचड़ से उसे,
तोड़ दिये बाँध, इतिहास है दुर्निवार,
सरिता को भाँति कौन उसे रोक सकता ?

गोली चले, उठें सैकड़ों कोड़े
बंगाल के गाँवों में, पहाड़ों में, कलकत्ते में
फिर भी, कुमार, निकल पड़ा है घोड़ा तुम्हारा
सरपट, बिजली की ट्राम से भी कहीं अधिक तेज़ !

तुम्हारी आँखों में दमकता लाल तारा
ऊर्ध्व भुजा, अग्नि-पूरित है तुम्हारी मुट्ठी
देश-विदेश के दानव हैं सभी चिन्तातुर
वे भाग रहे मरने से बचने को इधर-उधर।

व्यर्थ ही बहाते वे रक्त की लाल धारा
गाँव-घाट-हाट में जन्म का लाल तारा
काँप उठता है तुम्हारे पदक्षेप की आहट से,
देश-देश में दहकता वह तुम्हारे पंखों की गति में।

गिरी नहीं, गिरेगी भी नहीं, तुम्हारे घोड़े की नाल
प्राणों के इस्पात से सुदृढ़ तुम्हारा अभियान
मौत बन्धुओं के देश में तभी तो
तुम्हारी उन दुर्जय भुजाओं ने गुँजाया जय-गान ॥

इलोरा

आकाशे तोमार मुक्ति ; ये-कैलास बेँधेछे भास्कर
तोमार उर्मिल नृत्ये, नीलिमा से-नृत्येर सङ्गिनी;
सेखाने नेइको सोना कँटिल्येर नेइ किंकिनि,
सेखाने शून्येर कोले सम्पूर्णता स्वाधीन, भास्वर ।

से-दक्षयज्ञेर नाटे स्थिति काँपे संहारे-संहारे,
राजसूय असूयार युग गत कुमारसम्भवे;
नटराज सर्वहारा नीलकण्ठ गालवाद्यरवे
पाये-पाये पृथ्वी जागे सती तोले सर्वसंहारे ।

सन्न्यासी, तोमार मुक्ति बाँधा जड़ पाथरे आकाशे,
रौद्रेजले छायातपे वर्षे-वर्षे उन्मुक्त स्वाक्षर
कठिन कण्ठिते लेखो नीलाकाशे, कालेर ईश्वर !

आमरा भास्कर, नइ, मूर्ति, मुक्ति आनि कर्मे पापे,
यन्त्रेर घर्घरे, नित्य आन्दोलने, मुष्टिभिक्षा आसे
नीलकण्ठ आमादेर मुक्ति नित्य । आमरा नश्वर ॥

एलोरा

तुम्हारी तो मुक्ति आकाश में। निर्माण जिस कैलास का
मूर्तिशिल्पी ने किया नृत्य ऊर्मिल से तुम्हारे, नीलिमा ही संगिनी उस की,
यहाँ नहीं है स्वर्ण, न ही व्यवसाय कुटिलता पूर्ण,
यहाँ तो भास्वर है परिपूर्णता स्वाधीन शून्य की आँखों में।

दक्ष के उस यज्ञ-नाटक में काँपी है धरा-स्थित संहार की तालों पर,
राजसूय असूया का युग बीता कुमारसम्भव में
नटराज, सर्वहारा, नीलकण्ठ, ताल देते बम-बम रव से,
प्रत्येक चरणपात पर उन के जगती दुखिया धरती, देतीं सती सहारा

ओ संन्यासी, मुक्ति तुम्हारी तो बँधी है जड़-पत्थर से आकाश से
धूप में और वर्षा में, छाया में आतप में, तुम करते जाते अंकित स्वाक्षर
कठिन असिताश्म पर नीलाकाश के, हे काल-ईश्वर!

हम हैं मूर्तिशिल्पी, नहीं मूर्ति, लाते मुक्ति श्रमिक-कृषक के कर्म में,
यन्त्र की घर्घर में, नित के अपने आन्दोलन में,
हे नीलकण्ठ, मुक्ति हमारी आती भर-अंजुलि नित्य, हम तो मानव हैं नश्वर॥

जलदाओ

फाल्गुन आरम्भे तार—
एक हिसाबे अवश्य माघेइ
किंवा तारओ आगे
ओ-बछरे—या आर बछरे
बछरे-बछरे दीर्घ प्रकृतिर कर्मसूत्रे अथवा नियमे
छोटो घेरा माटिर संयमे
हावमाय मुक्तिते गाँथा सरस सजल सङ्कल्पे गम्भीर
गन्धेर आलाप तार बाजे
पापड़िते-पापड़िते तार परागेर पाखोयाजे
ओ-बछरे वर्षार सजल मिछिले
किंवा तारओ आगे बुझि पाँच बछरेर दीर्घ दूर अभियाने
प्राणेर प्रयासे आज प्रचुरता तार
ताइ आज
यखन आकाशे नामे निर्जन विषाद
अन्धकार परोयाना शिमुलेर लाले
गोलमोरेर सोनाओ पाण्डुर
शालिकेर ऐकयतान येमे याय जामरूल-बागाने
कलकातार काक आर समुद्रेर बकेर बलाका बहुदूर
तखनइ कुँड़िते लागे अधरा आवेग कोन
वसन्तबाहारे लागे सहिष्णु हृदये थरोथरो
प्रचण्ड मन्त्रणास्पन्दे एकाग्र निर्देशे
आनन्द निमेषहीन रूपान्तरे सृष्टिते आकुल

तार परे आलो ज्वालि
बन्धु किंवा बद्धेर आश्रये

पानी दो

फाल्गुन के शुरू में—
एक तरह से माघ ही में,
या उस से भी पहले
पिछले साल—या उस से भी पहले साल
साल पर साल प्रकृति के दीर्घ कर्मसूत्र में या नियम में
घिरी हुई छोटी सी धरती के संयम में
हवा की मुक्ति में गुंथे, सरस सजल संकल्प में गम्भीर,
पंखुड़ियों में उन के पराग की पखावज पर
उन की गन्ध का आलाप बजता है।
पिछले साल की वर्षा के सजल जुलूस में
या शायद उस से भी पहले के पाँच वर्षों के दीर्घ दूर अभियान के
प्राणमय प्रयास में आज जन की प्रचुरता है
इसी लिए आज
जब आकाश पर निर्जन विषाद उतर रहा है
सेमल की लाली में अन्धकार की सूचना है
गुलमोहर का सोना भी फीका पड़ गया है
शालिक की दीर्घ तान जामुन के बाग में थम गयी है
कलकत्ते के कौए और समुद्र की बलाकाएँ बहुत दूर हैं
तभी मिट्टी का आवेग कलिया उठा है, किस
वसन्तबहार से सहिष्णु हृदय में थरथराहट मच उठी है
प्रचण्ड यन्त्रणास्पन्द से एकाग्र लक्षित,
निमेषहीन आनन्द में रूपान्तर रचने के लिए आकुल।

फिर मैं बत्ती जलाता हूँ
मित्र या किताब के सहारे

किंवा कि खबर शुनि दाङ्गार कोथाओ क्लान्त
सन्ध्यार प्रान्तरे एसे निःस्वार्थ आकाशे देखि
फुटे आछे शान्त शुचि
समयेर जड़ो करा भुल एकटि मुहूर्ते धुये
विनीत पर्थर मतो निश्चिन्त अथच दान्त
कर्मेर संविते स्तब्ध
अभ्रान्त सम्पूर्ण सत्ता
रात्रिर नक्षत्रे येन प्रकृतिस्थ अस्तित्वेर आकाशे स्वाधीन
एकराश शादा बेलफूल ।

गरमे विवर्ण ह'ल गोल्मोरेर सावेक जौलूस—
कृष्णचूड़ा चोखे आने ज्वाला
रौद्रेर कुयाशा ज्वले शरा मरा पोड़ा लेवानंमे
एखाने-ओखाने देख देशछाड़ा लोक छायाय हाँपाय
पार्केर धारेर शाने पथे-पथे गाड़िबारान्दाय
भावे ओरा कि ये भावे ! छेड़े खोंजे देश
एइखाने केउ बरिशाले केउ केउ-बा ढाकाय

गरम हाओयाय झरे नील आर बेगुनी फुरुष
कृष्णचूड़ा निर्निमेष टेने चले टेने मालावदलेर पाला
खुँजे खुँजे यमुनार स्निग्ध छाया की हिल गरमे
एखाने-ओखाने देख कत घरछाड़ा लोक छायाय हाँपाय
पार्के छाउनीते पथे म्यानसनेर बारान्दाय धानेर धम्माय
कि ये भावे घर छेड़े खोंजे बुझि देश
कोथाय ये याबे भावे हाओड़ाय ना कि से ढाकाय

आमादेर घरे-घरे आमराओ नानान मानुष
गेये चलि चुपि-चुपि आमादेर पाला
किंवा गाइ ना आर माथा नाड़ि पोड़ा माथा गरमे नरमे
थेके थेके हयतो-वा आमादेर केउ-केउ मरीया हाँपाय

या थक कर कहीं दंगे की खबर सुनता हूँ, और तब
सन्ध्या के प्रान्तर में आ कर निःस्वार्थ आकाश में देखता हूँ
समय की जोड़ी हुई भूलों को पलभर में धो कर
विनीत पद्म की भाँति निश्चिन्त तथापि संयमित
कर्म की चेतना से स्तब्ध
खिली हुई है शान्त शुचि
अभ्रान्त सम्पूर्ण सत्ता
रात के तारों में मानो प्रकृतिस्थ, अस्तित्व के आकाश में स्वाधीन
सफ़ेद बेलफूलों की राशि।

गरमी से गुलमोहर का पूरा जुलूस झुलस गया है—
कृष्ण चूड़ा से आँखें जलने लगती हैं
धूप का कुहासा मुरझा कर झरे झुलसे लेबर्नम में जलता है
इधर-उधर देखो गाँव छोड़ कर आये लोग छाया में हाँफते हैं
पार्क के किनारे पटियों पर रास्तों पर बने गाड़ियों के शेड के नीचे
सोचते हैं कि वे क्या सोचें! गाँव छोड़ कर आये अपना गाँव खोजते हैं
कोई यहीं, कोई बरीसाल में या कोई-कोई ढाका में।

गरम हवा में नीले और बैंगनी बुरूस झरते हैं
कृष्णचूड़ा अपलक मालाबदल का खेल खेलती चलती हैं
हिंस्र गरमी में यमुना की स्निग्ध छाया खोजते-खोजते
इधर-उधर देखो कितने बेघर लोग छाया में हाँफते हैं
पार्कों में, शेडों में, सड़कों पर, इमारतों के बरामदों में, फुटपाथ के पत्थरों पर
घर छोड़ कर आये ये लोग क्या सोचते हैं! शायद अपना गाँव खोजते हैं
शायद सोचते हैं कि अब कहाँ जायें, हावड़ा में या फिर ढाका में।

हम लोग भी तरह-तरह के जने अपने-अपने घरों में बन्द
चुपचाप अपनी कड़ियाँ गाते चलते हैं
या शायद गाते नहीं, सिर्फ़ अपने सिर हिलाते रहते हैं, गरमी-नरमी से
झुलसे अपने सिर
कभी-कभी शायद हम में से कोई-कोई इस जीवित मृत्यु की या मृत-जीवन की

जीवने मृत्युते किंवा मृत्युते जीवने भग्न व्यर्थ असहाय
कि ये भावे कर्महीन अर्थहीन अचेना स्वदेश
कोथाय ये याबे भाबे कोन देश शीतल वर्णाय

कारण देखेछे सब गोबि मरूभूते एक याश्रा कत सहास पुरुष
यात्री अभियात्री चले देखेछे तो तुषारेर देशे जयमाला
गलाय दुलिये चले विज्ञानेर मैत्रीर मरमे
मानुषेर प्रेमे वीर दग्धमेरु किंवा दीर्ण मध्य एशियाय
गमेर धानेर खेते प्राणेर आश्विन आने स्टेपे ओ तुन्द्राय
विजयी वसति आने सच्छल वसति आने उन्मुखर देश
कत घेलिङस्किन ! हाओड़ाय चाटगाँय बाँकुड़ाय चलेछे ढाकाय

हयतो-वा निरुपाय
हयतो-वा विच्छिन्नेर यन्त्रणाइ वर्तमाने इतिहास
बालिचड़ा मरा नदी जलहीन पाये पारापार
अथच वैशाखी हाओया बाङ्गलार समुद्रेर
आमेर मुकुले फल
राशि राशि बेलमल्लिकाय
बागान विह्वल आज कालेरइ बागान
तबु लुब्ध रुद्रेर मायेर
पाताझरा पाता-झरानोर क्षोभेर रागेर
तबु सेइ बीभार मरार मरिया यन्त्रणा चले
आमादेर दिनेर शिकड़े रात्रिर पल्लवे ।

यदि-वा हतुम फूल वइतुम दक्षिणेर हाओया
रइतुम निष्फलक रूपान्तरे द्रुत नित्य चाँद

किन्तु आमरा ये पृथिवीर आमरा मानुष
आमादेरइ अतीतेर स्रोते गड़ि भविष्यत्
ए-कुले ओ-कुले आमादेरइ वर्तमाने
किछुटा उद्वृत्त सत्तेओ—वृष्टि किंवा आर्तेसीय जले ।

मग्न व्यर्थता में चरम असहाय हो कर हाँफने लगते हैं।
इस कर्महीन अर्थहीन अचीन्हें स्वदेश में वे क्या सोचते हैं ?
शायद सोचते हैं कि कहाँ जायें, कहाँ है वह शीतल वर्षा का देश।

क्योंकि उन्होंने देखे हैं गोबी के रेगिस्तान में यात्रा करते हँसमुख लोग
देखे हैं तुषार-देश में चलते अपने गले में जयमाला डाले
विज्ञान की मैत्री से परिपूर्ण हृदय वाले यात्री-अभियात्री,
मानव-प्रेम के चोर जो दग्धमेरु या दीर्ण मध्यएशिया में
गेहूँ और धान के खेतों के सहारे स्टेप और तुन्द्रा में प्राणों का शरद ले आते हैं
जो विजयी बस्तियाँ लाते हैं, समृद्ध बस्तियाँ लाते हैं—और देश गा उठते हैं,
न जाने कितने चेल्युस्किन हावड़ा, चटगाँव, बाँकुड़ा या ढाका पहुँच जाते हैं।

शायद हम निरुपाय हैं
शायद विच्छिन्न जनों की यन्त्रणा ही वर्तमान का इतिहास है,
सूखे पैरों से मरी नदी की बालू रूँधते इस पार-उस पार चलते रहना
फिर भी बंगाल के समुद्र पर वैशाख की हवा चलती है
और आम के बौर फलते हैं,
बेल और मल्लिका के भार से
बाग आज विभोर है, काल का बाग।
फिर भी भीषण माघ के क्षोभ और क्रोध की
पत्तों के झरने और पत्तों को झाड़ने की
जीने और मरने की चरम यन्त्रणा चलती रहती है
अपने दिनों की जड़ों में, रातों के पत्तों में।

काश मैं फूल होता, या दक्षिण की हवा होता होता
काश मैं रूपान्तर में द्रुत और नित्य निर्निमेष चाँद होता

पर हम तो इस धरती के हैं, मनुष्य हैं
हम अपने ही अतीत के स्रोत से भविष्य गढ़ते हैं
इस पार-उस पार अपने वर्तमान के किनारों पर
कुछ बच जाने पर भी—वर्षा में आर्तसीम जल में।

कम्पिष्ठ यन्त्रणा—ना ह'ले बलब तीक्ष्ण प्रतीक्षाय
आततिर आवर्त-सेतुते धैंपाधोंपि
आमादेर उत्तराधिकार आमादेरइ अनुकृतपेर
प्रात्यहिक पदक्षेपे
आमरा कोथाइ गाँथि बुनि आर आमराइ मानि
निजे-निजे एवं सबाइ यदि माने मइ
दिइ निजे-निजे किंवा सकलेइ बेशि केउ कम
सदसत् तार निजेर सबार कम केउ बेशि

आमादेरइ इतिहास मुहूर्त-मुहूर्त गोने
तरंगित आयु तार जीवने मृत्युते
आमादेर जीविकाय जीवनयात्राय देह-मनेर विन्यासे
कर्मे अपकर्मे कर्महीनताय—किछुटा उद्‌वृत्त सत्त्वेओ
एक पात्र जल ज'मे येमन बरफ पात्रटि फाटाय

एबारे उठेछे हाओया धोंया मेइ दोला देबे चाँद
चैत्रेर सन्ध्याय हाओयाय-हाओयाय
ना कि कोनो दोलाइ देय ना से ?
पूर्णिमार चाँद बटे बाँध भेङे तबु कि से हासे
प्रकृति कि अप्राकृत मूढ़ताय
हासबे कि एकाइ निषाद ?

निर्वाक निमेषहीन सन्ध्या पूर्ण चाँदेर मायाय
हेमन्त विषाद ए कि वसन्त एनेछे ?

तबु सन्ध्या चैत्र सन्ध्या समुद्रेर वार्तावह
दग्ध दिने मृत्युर शहरे
तबुओ पूर्णिमा आसे पथे छादे प्रत्यक्ष कायाय
दुर्दिने दिनेर छाया कूट दुर्विषह
भेङे दिये अन्ध विसंवाद
उन्मादेर व्यवसाओ
चूर्ण करे गृध्नु दानविक हिंस्र कण्ठ

कर्ममयी यन्त्रणा—या फिर कहीं तीक्ष्ण प्रतीक्षा में
तनाव कि भँवरीले सेतु पर धक्कमधक्का करते
अपने कर्म और अभिनय के दैनिक पदक्षेप में ही
हमारा उत्तराधिकार है
हम खोदते हैं, गूँथते हैं, बुनते हैं, छीलते हैं
हम अपने-अपने खेत गोड़ते हैं—कोई कम, कोई ज्यादा
जिस का अच्छा-बुरा फल हम सब को मिलता है
किसी को कम किसी को ज्यादा

हमारा इतिहास एक-एक पल गिनता है
उस की लहर हमारा जीवन-मरण नापती रहती है
हमारी जीविका मे जीवन-यात्रा में देह-मन के विन्यास में
कर्म में अपकर्म में कर्महीनता में—कुछ बच जाने पर भी
जैसे किसी बरतन में जल जमे और बरतन बर्फ़ से फट जाय।

अब हवा चली है, धुआँ नहीं है, चाँद झोंटे लेने वाला है
चैती साँझ की हवा में
या कि वह कोई झोंटा नहीं लेता ?
पूनों का चाँद बाँध जरूर तोड़ता है फिर भी क्या वह हँसता है
प्रकृति पर या अप्राकृत मूढ़ता पर ?
क्या निषाद अकेला ही हँसेगा ?

पूरे चाँद की माया में निर्वाक् निमेषहीन सन्ध्या
वसन्त में यह हेमन्त का कैसा विषाद ले आयी है ?
फिर भी सन्ध्या यह चैती सन्ध्या दग्ध दिन में मृत्यु के नगर में
समुद्र का मर्मर संवाद लाती है,
फिर भी पूर्णिमा आती है सड़कों और छतों पर साकार
दिन की कराल विषैली छाया को डुबोती
अन्य विषाद को चूर-चूर करती
उन्माद के व्यवसाय को उखाड़ती
लोलुप दानवी हिंस कण्ठों को रुद्ध करती।

हयतो-वा शुनिनिको हासि
तोमार पूर्णिमा ! तबु आमि शुधु खुँजिनि विषाद
सोनालि चाँदेर एइ नील निर्विकार आलोर वन्याय
बरञ्च शुनेछि देशे-देशे लक्ष्मीमन्त सच्छल सुठाम
ग्रामे-ग्रामे शहरे-शहरे, विस्तृत शान्तिर वर्षा
देखेछि सवाइ येन भासि
दुलि येन ज्योत्स्नार समुद्रेर ढेउये-ढेउये, नदी किंवा
आलोर झर्णाय
आकाशेर समतले मृत्युओ येखाने पुत्र ओ कन्यार
सम्पूर्ण वार्धक्ये स्थिर मानविक येखाने बाँचाइ आर
बाँचानोइ स्वाभाविक ।

हयतो-वा मन्त्रणाइ सार
देखे येते हबे आज ठेके शिखे
सत्तार अक्षरे लिखे-लिखे
अत्याचारे अनाचारे उद्भ्रान्त उन्माद एइ वर्तमान
निजे-निजे एवं सबार कृतकर्म शुने येते हबे
कुरुक्षेत्रे भीष्म येन किंवा सेइ विराट प्रासादे
अज्ञातवासेर वीर बृहन्नला अर्जुनेर गान
किंवा येन फाल्गुन चैत्रेर प्रस्तरित
पाताझरा नतून पातार ओंकशिते अङ्कुरे
शिराय-शिराय शिकड़ेर प्रच्छन्न उत्सवे
अधरा अथच तीव्र प्राणेर त्वरित
अनिवार्य गतिर स्तब्धता
श्रुतिर आक्षेपस्पन्दे
कवितार छन्देर मतन
किंवा येन उत्तोलित पदक्षेपे
यखन सामने देखि सेतुर फाटले
अतलेर प्रत्याख्यान एवं आह्वान
किंवा घुमि भोहानार गान

शायद मैं तुम्हारी हँसी नहीं सुन पाया
पूर्णिमा ! फिर भी मैं ने सुनहले चाँद के इस नीले निर्विकार आलोक की
बाढ़ में सिर्फ़ विषाद नहीं खोजा है,
वरन् मैं ने गाँव-गाँव में, शहर-शहर में, देश-देश में
भाग्यवानों, धनवन्तों और सुडौल जनों की गिनती की है,
विस्तृत शान्ति की वर्षा में देखा है मानो सब तैर रहे हों
मानो सब ज्योत्स्ना के समुद्र की लहरों पर झूल रहे हों
नदी या आलोक के झरने में
समतल आकाश के नीचे जहाँ मृत्यु भी
पुत्रों और कन्याओं के सहारे सम्पूर्ण प्रौढ़ता में स्थिर और मानविक है
जहाँ जीना और जिलाना स्वाभाविक है।

शायद यन्त्रणा ही सार है
ठोकर खा कर सीख-सीख कर देखते जाना होगा
सत्ता के अक्षरों में लिख-लिख कर
अत्याचार और अनाचार से उद्‌भ्रान्त यह वर्तमान
अपने-अपने कर्मों में सुनते जाना होगा
कुरुक्षेत्र के भीष्म अथवा उस विराटनगर के महल के
अज्ञातवास में वीर बृहन्नला अर्जुन का गीत
या मानो फाल्गुन-चैत्र की तैयारी में
झरते पत्तों में, अंकुरों में, नये पत्तों की शिराओं में
जड़ों के प्रच्छन्न उत्सव में
निराधार फिर भी तीव्र प्राणों की स्तुति की
दुर्निवार यति की सी स्तब्धता
श्रुति के विराम की निस्पन्दता
कविता के छन्द की भाँति
या मानो पैर उठाने के बाद जैसे
सामने सेतु की दरार से झाँकता
अतल का प्रत्याख्यान और आह्वान दिखाई दे जाय।
या शायद मुहाने का गीत

हुगलिर निस्तरङ्ग सञ्चयी मध्याह्ने
पिछने अनेक स्मृति बहुस्रोत
रूपनारानेर
दामोदर काँसाइ हलदि रसुलपुरेर
दूरेर मातला माथामाङ्गा आरो दूरे पथार वानेर
अथच निःस्रोत मने हय एका कर्महीन
प्रतिवेशी नेइ
थाकलेओ निःसङ्ग से, कारण, सर्वदा
परधर्म भयावह भाँटाय जोयार
समुद्रेर आन्दोलन वान-डाका सन्त्रासे निःशेष
ताइ प्रतीक्षाय स्तब्ध किन्तु समुद्यत
अन्धकार प्रेक्षागृहे खरदीप्त नृत्यमञ्चे बोल छड़ावार
आगेर मुहूर्ते आभङ्गआतत
बालासरस्वती किंवा रुक्मिणी देवीर मतो—
आसन्नसम्भवा अन्तर्मुखी जननीर मतो
वैशाखीर वृष्टिर आगेर स्तब्धताय सतर्क गम्भीर—
किंवा येन बल्गा धरे तातार सओयार एकाग्र संहत
पामीरे आराले किंवा क्षिप्र कृष्ण कास्पय सागरे
तारपर लागे दोला लागे दोला
खरधार स्रोत
कल्लोल मुखर
समुद्रे-समुद्रे ओठे ताले-ताले
समुद्रे नदीते नील महासमुद्रेर कान्नाय हासिते
सागरउथ्थिता सेइ अधिष्ठात्री सुन्दरीर आविश्व आभासे
उर्मिल जोयार

एकाकार मुहूर्ते तखन घूर्णायित क्षणे साम्प्रतिक
अतीत ओ आगामीर गान
प्रात्यहिके-प्रात्यहिके

हुगली के निस्तरंग संचित मध्याह्न में,
और उस के पीछे अनेकों स्मृतियाँ, अनेकों स्रोत
रूपनारायण के
दामोदर के, काँसाई के, हल्दी के, रसूलपुर
सुदूर मातला के माथाभाङ्गा के
और उस से भी दूर पद्मा की बाढ़ के
और फिर भी यह कर्महीन निस्रोत अकेला लगता है
जिस का कोई पड़ोसी न हो
और हो भी तो निःसंग क्योंकि परधर्म
सदा भयावह होता है भाटे में ज्वार की भाँति
समुद्र का आन्दोलन उमड़ते सन्त्रास में समास हो जाता है
इसी लिए प्रतीक्षा में स्तब्ध किन्तु समुद्यत
अँधेरे प्रेक्षागृह के प्रखर दीप्त नृत्य-मंच पर बोल शुरू होने के
पहले के क्षण में स्थिर भंगिमा में
बाला सरस्वती या रुक्मिणी देवी की भाँति—
आसन्न प्रसवा अन्तर्मुखी जननी की भाँति
वैशाख की वृष्टि के पहले की स्तब्धता में सतर्क और गम्भीर—
या मानो रास थामे पामीर या अराल या शायद कृष्ण कश्यपसागर पर
एकाग्र संहत तातार सवार हो
और उस के बाद छोटे पर छोटे लगते हैं
प्रखर धार का प्रवाह
कल्लोलों में मुखरित हो कर
समुद्र-समुद्र में ताल-ताल पर उमड़ने लगता है
समुद्र में नदी में नील महासमुद्र की हँसी में रुदन में
सागरोत्थिता उस अधिष्ठात्री सुन्दरी के आविश्व आभास में
उर्मिल ज्वार।

उस एकाकार मुहूर्त में उस चूड़ायित क्षण में
अतीत और अनागत का गीत साम्प्रतिक हो कर
प्रतिदिन की दिनचर्या में

पलिते उर्वर दिके-दिके मानसे शरीरे
जीवने जीवन ।

तोमार स्रोते बुझि शेष नेइ, जोयार भाँटाय
ए-देशे ओ-देशे नित्य उर्मिल कल्लोले
पाड़ ग'डे पाड़ भेङ्गे मिछिले जाठाय
मरिया वन्यार युद्धे कखनो-वा फल्गु वा पल्वले
कखनो निभृत मौन बागानेर आत्मस्थ प्रसादे
विलाओ वेगेर आभा

आमि दूरे कखनो-वा काछे पाले-पाले कखनओ-वा हाले
तोमार स्रोते सहयात्री चलि, भोलो तुमि पाछे
ताइ चलि सर्वदाइ
यदि तुमि म्लान अवसादे
क्लान्त हओ स्रोतस्विनी आकर्मण्य दूरेर निर्झरे
जियाइ तोमाके पल्लवित छाया विछाइ हृदये

तोमातेइ बाँचि प्रिया
तोमारइ घाटेर गाछे
फोटाइ तोमारइ फूल घाटे-घाटे बागाने-बागाने ।

जल दाओ आमार शिकडे ॥

उर्वर मिट्टी की दिशा-दिशा में, मानस में शरीर में
जीवन में जीवन्त हो जाता है ।

लगता है तुम्हारे प्रवाह का कोई अन्त नहीं, तुम ज्वार-भाटे में
देश-देश में ऊर्मिल कल्लोल में
किनारे ढहाती किनारे बनाती जुलूस में अभियान में
बाढ़ के अजेय युद्ध में कभी फल्गु में कभी पल्वल में
और कभी निभृत मौन उपवन के आत्मस्थ प्रसाद में
अपने वेग को आभा मिला देती हो ।

मैं कभी दूर कभी पास कभी पाल पर कभी डाँड़ पर
तुम्हारे प्रवाह के साथ-साथ चलता हूँ कि तुम कहीं भूल न जाओ
इसी लिए निरन्तर चलता हूँ
अगर तुम म्लान अवसाद से
क्लान्त हो जाती हो अकर्मण्य दूर के निर्झर में
तो स्रोतस्विनी ! मैं तुम्हारे हृदय पर पल्लवित छाया बिछा कर
तुम्हें जिलाता हूँ ।

तुम्हीं में मैं जीता हूँ प्रिया
तुम्हारे ही घाट के वृक्ष पर
तुम्हारे ही फूल खिलाता हूँ, घाट-घाट पर बाग-बाग में ।

मेरी जड़ों में पानी दो ॥

अन्धकारे आर

अन्धकारे आर रेखो ना भय,
आमार हाते ढाको तोमार मुख
दु-चोखे दिये दाओ दुःख सुख,
दु-बाहु घिरे गड़ो तोमार जय,
आमार ताले गाँयो तोमार लय।

असह आलो आज घृणाय दग्ध,
दूषित दिने आर नेइको रुचि,
अन्धकारइ एकमात्र शुचि
प्रेमेर नइवत घृणाय स्तब्ध
आमार हाथे ढाको तोमार मुख॥

अन्धकार से अब—

अन्धकार से मत डरो अब।
अपना मुख रख दो मेरे हाथों में;
आँखों में पी लो सुख-दुख दोनों,
बाँहों में घेर कर जीत तुम जाओ,
ताल में मेरी, लय अपनी अब बाँध दो।

असह्‌ प्रकाश दग्ध है घृणा से आज,
दूषित दिन में रही नहीं कोई रुचि।
एकमात्र अन्धकार ही तो है शुचि।
प्रेम का संगीत हुआ घृणा से स्तब्ध।
अपना मुख ढक लो मेरे हाथों से॥

क्लान्ति नेइ

आमार स्वप्नओ अपरिसीम
आमार मने कोनो क्लान्ति नेइ,
अथच डाले-डाले शुकनो हाहाकार,
अथच माठे-माठे असाड़ हिम,
आकाशे कान्नारओ शान्ति नेइ !

जीवन उद्ग्रीव प्रतीक्षाय
प्रतीक्षा, ना एक मिथ्रसुर !
आकांक्षार नीले रेडेछे अङ्गार,
चाओयाय पाओया मेशे से भिक्षाय,
शरीरे मन मेले मुठिते दूर ।

चाइ ना तुमि बिना शान्तिओ
तोमाके चाइ ताते शान्ति नेइ ।
कृष्णचूड़ा राडे, सेओ तो हाहाकार ?
आमारइ हृदयेर कान्ति ओ ।
तोमाके जेनेछे ये शान्ति नेइ
जीवने तार आर, सेइ हीरार ॥

नहीं है क्लान्ति

मेरे भी स्वप्न हैं सीमाहीन
मेरे मन में कोई क्लान्ति नहीं
किन्तु डाली-डाली पर शुष्क हाहाकार
जल-थल पर छाया है अवसन्न तुषार
आकाश में रुदन निरन्तर, लगातार।

जीवन प्रतीक्षा में आकुल-उदग्र
प्रतीक्षा है अथवा यह कोई मिश्र धुन ?
आकांक्षा के नीड में रंजित अंगार,
भिक्षा में ही चाह और पूर्ति का मिलन,
मन है शरीर में, ज्यों मुट्ठी में विस्तार।

शान्ति भी तुम्हारे बिना मुझे अस्वीकार
चाह यह मेरी कभी खत्म नहीं होगी
गुलमोहर की लाली! हाँ, प्रतीक्षा है वह भी।
मेरे ही हृदय की कान्ति वह।
जिस ने तुम्हे जाना हैं, उसे नहीं शान्ति,
जीवन भर नहीं कोई शान्ति, उस हीरे को॥

यम-ओ नेय ना

तुमि तो देखेछ ताँके ? आमादेर बुड़ि ठाकुमाके ?
पेयेछेन बहु ताप, देखेछेन बहु पाप, मृत्युओ अनेक,
तबुओ अम्लान प्राण, शुभ्रकेश सौन्दर्य आरेक
मर्यादार, अनेक देखार रूप; अथच सबाके
निर्विशेष ममताय संयत उद्वेगे उपदेश,
सहोर अम्लान प्रज्ञा नेभेनि वृद्धार जरायणे,
शततार आशा दीप्त शीतेर आकाश से-नयने,
हिरण्मयी, निरुपमा, उपमा कि ? खुँजेछ स्वदेश ?

यम नाकि भय करे, यम नाकि दूरे राखे ताँके !
सात छेले सब गेछे, केउ दूर कमिशारियटे,
केउ-वा लक्ष्मीर खोंजे मदिर तराय चापा कबे
कारो नामे कालाघुषा बाजारे खाराप कथा रटे,
सबाके नियेछे यम, शुधु एकजनार गौरवे
तल्लासीरा हाना देय आजओ, घरे पाय नाको ताके,
कखनो नन्दित वन्दी सर्वदाइ देश याके डाके,
से-छेलेर मुख देखे यम-ओ नेय ना ठाकुमाके ॥

यम भी नही बुलाता

तुम ने तो देखा है उसे ! हमारी बूढ़ी दादी को ?
पाया है बहुत ताप, झेले हैं बहुत पाप,
देखी है मृत्यु भी असंख्य बार,
फिर भी अम्लान प्राण, शुभ्रकेश : मर्यादा का एक और नया सौन्दर्य ।
अनुभव का साक्षी : सुख, फिर भी सभी के लिए
निर्विरोध ममतामय संयत उपदेश ।
धैर्यमयी अक्षय बुद्धि, अभी तक न सठियायी ।
सत्यनिष्ठा, आशा से दीप्त शरदाकाश—उस के नयन ।
हिरण्मयी, निरुपमा वह ! उपमा दें किस से ?—मातृभूमि !

यम डरता है क्या ? यम क्या दूर रखता है उसे ?
सात-सात बेटे ! सब गये ! कोई दूर कमसरियट में !
कोई लक्ष्मी की खोज में दब गया न जाने कब गद्दी के नीचे !
वह एक बदनाम था बाज़ार में, लोग कानाफूसी करते हैं !
यम ले गया उन सब को; पर एक था गौरवशाली !
आज भी तलाशी वाले बोलते हैं धावा, पर घर में नही पाते उसे !
क़ैदी, वह वन्दनीय था कभी, देश के लिए सदैव मरने को तत्पर
उसी का मुँह देख, यम को साहस नही होता कि दादी के निकट आये ॥

उपोसी पाहाड़ेर चड़ाइपार

उपोसी पाहाडेर चड़ाइपार
एसेछि आज एइ उपत्यकाय,
पथेर लड़ायेर खेदेर शेषे
घर कि बेँधे दिले नील छायाय ?
एखाने गाछे गाछे सरस प्राण,
एखाने घरे घरे सरल गान,
एखाने मानुषेर सहज मान—
एले कि जीवनेर उपत्यकाय ?
भिखारी दिनगुलि हयेछि पार,
हाओयाय पार नील समुद्दुर,
आकाल रातगुलि करेछि शेष,
मेघेर रातगुलि, ये रौद्रेर
शरद्-ऊषा दिये करेछि जय
से रौद्रे तो नेइ मरुर भय,
ये आश्विने नेइ धानेर क्षय
आमरा सच्छल उपत्यकाय ।
पाहाड घीरे जागे स्थपति आकाशेर
मेघ ओ रौद्रेर प्रेमेर आमामेर
सतेज मुक्तिर श्याम बातासेर
गानेर नदीपाड़े उपत्यकाय
हासिर आलो भरे एइ ये देश—
कविता आमादेरइ स्वदेश एइ
उपोसी पाहाड़ेर चड़ाइपार...
भिखारी दिनगुलि ये खाने शेष
सबुज शान्तिर उपत्यकाय ॥

उपत्यका में

भूखी पहाड़ियों के ढलानों के पार
अब हम पहुँच गये इस उपत्यका मे।
पथों के दुर्धर्ष संघर्ष की समाप्ति पर
क्या यह नील छाया निर्मित करेगी कोई घर।
यहाँ वृक्ष-वृक्ष पर प्राणों की सरसता
यहाँ घर-घर में गान है सरल,
यहाँ प्रति मनुष्य का सम्मान सहज है
क्या हम पहुँच गये हैं जीवन की उपत्यका में ?
भीख माँगने वाले दिन बीत गये
हवा के पंखों पर नील समुद्र पार कर
अकाल-रात्रियाँ अब शेष हो गयीं
मेघाच्छन्न रात्रि को चीर कर सूर्य
शरद् उषा की प्रभा रहा है बिखेर
इस आलोक में मृत्यु का नहीं कोई भय
इस आश्विन में बाढ़ करेगी न कोई क्षय
हम हैं स्वच्छन्द इस उपत्यका मे।
आकाश को थामे है पर्वत-स्थपति
मेघ और सूर्य देते आभास प्रेम का
सतेज मुक्ति है व्याप्त वातास में
गान की नदी के तट पर बसी यह उपत्यका।
हँसी का आलोक झरता जहाँ वही है यह स्वदेश
हमारा स्वदेश यह कविता ही है
भूखी पहाड़ियों के ढलानों के पार
भीख माँगने वाले दिन अवशेष हुए
हरित शान्तिमयी यह उपत्यका ॥

१

देखेछिलुम तो घोर लक्ष्मी गृहिणी,
तन्वी से श्यामा, चकित-हरिणी—यदिइ वा तोले चोख,
हातेर सोनार स्पर्श साराटा संसार,
येन वा फुलेर गन्ध छड़ाय ए-घरे ओ-घरे सबखाने
तारइ उठानेर चलेर टबे चारा।

आज देखि ताके कर्ममुखर कुलरोते,
विम्बेर एक नारी,
तन्वी से श्यामा, तबु मने हय शरीर तार
दीर्घ सुठाम स्वप्रतिष्ठ स्पष्टतर—
मेदुर दुचोख थेके-थेके खर बिजलि हाने।

के ताके तुलेछे टब थेके सोजा प्राङ्गणे,
माकि से अधरा, यौवन भेङ्गेछे पोडामाटिर ?
माथेर सब पल्लव येन पत्रनिविड़ आषाढ़े
श्याम समारोहे हाओयाय बकुलगन्धे दोले।

२

ताके चेना येन कठिन मानस-यात्रा,
किंवा येन-बा मरुभूमि घुरे जरिप,
हठात् आड़ाले देखा खेजुरेर चिहर,
हठात् देखाय टलोमलो हिमदीघि।

आलेख्य

१

देखा था उसे घर की लक्ष्मी गृहिणी
तन्वी वह श्यामा चकित-हरिणी—जब कभी प्रसारित करती आँखें,
हाथ के सोने के स्पर्श से उज्ज्वल उस का सारा संसार,
मानो फूल की सुरभि फैलाती हर कक्ष में
उसी के आँगन में यत्न के गमले में खिला यह पौधा।

आज उसे देखता हूँ कर्ममुखर कलरोल में,
लगती वह विश्व की एक नारी,
तन्वी है यह श्यामा, फिर भी मानो शरीर उस का
दीर्घ सुगठित स्वप्रतिष्ठ से स्पष्टतर—
कोमल आँखों से रह-रह कर तोड़ा बिजली कौंधती।

किस ने उसे गमले से उठा कर धर दिया है इस खुले प्रांगण में,
अथवा है वह मुक्त, तोड़ डाला है कुटिया का बन्धन ?
माघ की लगती वह सद्य पल्लव, मानो घने पत्तों वाले आषाढ़ में
बादलों के समारोह में हवा में डोलती मौलसरी की सुवास में।

२

उसे पहचानना मानो कठिन मानस-यात्रा है,
या फिर मानो मरुभूमि में घूम-घूम कर जरीवकशी है,
अचानक ओट से दीख पड़ने वाले खजूर वृक्ष की सिहरन है,
कभी अचानक छलकता हिम सरोवर लगता है।

आकाशेर मतो ऊपर, चलेछे धुधु पाण्डुर ढेउ,
टिलाय भाङ्गाय दिगन्ते प्रान्तर,
तारइ माझे दुइ पाहाडेर रादे सतेज रङीन पलाश
फाल्गुने किवा राङ्बे !
अमर आशाय निश्चित येन रोपण करेछे केउ ।
एइ गाछे तार उपमा ।

जानि मने हय येके-थेंके कोथा पालाइ
येखाने द्वन्द्व समाहृत एक सुस्थ सुथी गाने,
जानि तबु ताते पुचबे ना एइ वास्तविकेर बालाइ ।
से तो पालाय ना, से बले समाजइ भाङ्बे ।

से बले, मनके धनुकेर मतो बाँकाबे
आर तारपरे माटिते जिष्णु खरशरे
जागाबे समार निर्झर ।
मन ? मने आछे, से बले, मानससरोवर
बहु पर्वत, तुङ्ग शिखर; से बले, प्रतिटि दिन
आमरा सबाइ घेरपा !

३
कि क'रे ये बलो कुसंस्कार ? ताके
देख यदि कोन टाट्का सकाले, सबे
स्नान सेरे भिजे
चूल मेले दिये शुरु करे तार दिन,
ताहले देखबे तोमादेरओ मने हबे,
यतइ बाँधुक ताबाय ताबिजे भये उद्वेगे आशाय
निजके एवं आपनजनके, नाना
विश्वासे आर ऐतिह्येर भाषाय,
तबु येन तार शरीरेर तनु नम्रता
हृदयेर एक दिनरात्रिर नियमित निष्ठाइ ।

आकाश की तरह ऊसर, केवल पीताभ लहरों का चलना,
टीले पर तट पर दिगन्त प्रान्तर पर
उस के बीच दो पहाड़ों की खाई में सतेज पुष्पित पलाश !
फागुन और कितना रंग लगायेगा !
अमर आशा से अवश्य किसी ने मानो किया है रोपण ।
इस वृक्ष पर अपनी उपमा ।

जानता हूँ रह-रह कर कहीं भागने की इच्छा होती है
जहाँ द्वन्द्व समाहित होता है एक स्वस्थ सुन्दर गीत में,
जानता हूँ फिर भी उस से यथार्थ का यह चक्कर होगा नहीं समाप्त ।
वह तो भागता नहीं, केवल कहता इस समाज को तोड़ूँगा ।

वह कहता मन को धनुष की तरह करूँगा बंक
और फिर जमीन पर जिष्णु के तेज बाण से
उज्जीवित करूँगा हर एक का निर्झर ।
और हृदय ? याद मुझे, करता हमेशा बात मानसरोवर की,
बहुत से पहाड़ और उत्तुंग शिखर की; वह कहता है,
हर दिन हम सब दीरपा हैं !

३

कैसे कहते हो । तुम कुसंस्कार ? उसे
यदि तुम देखो कभी सद्य भोर वेला में, बस
नहा कर भीगे बालों को
फैला कर करती शुरू अपना काम,
तो देखना, तुम्हें भी प्रतीत होगा
चाहे कितने ही तावीज़-तागे, भय, उद्वेग, आशा से,
अपने को और अपनों को बांध ले वह बन्धनों से,
गाना विश्वासों में और परम्परा की भाषा में,
फिर भी मानो उस की देह की नम्रता
हृदय की, दिन रात की नियमित निष्ठा ही है ।

प्राचीन देशेर दीर्घ जटिल विन्यासे
—येखाने बाबूर समाजे आजके मनेर प्राणेर पक्षे
दुदण्ड टँका दाय
जीविकार दाये छाड़ा—
देख देख चेये जीवनेर सेइ देशे
भिजे चूल मेले सद्य पट्टवासे
गोटा जीवनेर प्रेमे विश्वासी वाङ्गलादेशेर मेये,
करुणाय स्मित, प्रथमे कुमारी, वयसे सेवाव्रता ॥

प्राचीन देश के दीर्घ जटिल विन्यास में
—जहाँ बाबुओं के इस समाज में मन-प्राण को ले कर
टिकना एक क्षण भी दूभर है
जीविका के प्रयोजन के सिवा—
देख लो आँखों से जीवन के उस देश में
भीगे बालों को फैला कर धुले कपड़े पहन
सम्पूर्ण जीवन के प्रेम मे विश्वास रखने वाली बाङ्ला देश की लड़की,
करुणा से उजली, पहले कुमारी, उम्र होने पर सेवाव्रत धारी ॥

सनेट

आमि तो छिलाम शून्य तेपान्तरे उद्वास्तु पाथर,
निकष पाहाड किंवा टिला, किंवा, बला याय, ढिपि,
तुमि शुरु क'रे दिले तोमार शकाब्दे शिलालिपि;
आज यदि याओ तबे मुछे याओ समस्त स्वाक्षर ।

आमि या छिलाम, एका, अविचल, पाललिक शिला,
ताइ शुधु रेखे याओ, निये याओ दीर्घ इतिहास,
यात्रे यदि याओ दूर इन्द्रपस्थ मथुरा मिथिला,
आमार आदिम सत्ता नील शून्ये फेलुक निःश्वास ।

ना हले अन्तत भाङ्गो तोमार खोदाइ सब स्मृति,
भेङे भेङे छारखार क'रे दाओ भास्कर्य-बाहार,
आमाके छड़िये जाओ इतस्तत थुष्टिर आहार,
धेये याक ढल-स्रोते, भेसे याबे वास्तु कालचिति ।

कोथाय पालाबे तुमि, तोमारइ ए स्मृतिर पाहाड़,
धूर्त अगस्त्येरओ काछे कखनो से नोयायनि घाड़ ॥

सॉनेट

मैं था अकेला निष्प्राण ऊजड़ में एक विस्थापित शिला,
काला पहाड़, अथवा टीला, या सम्भवतया एक ढूहा
तुम आये, अंकित किया तुम ने अपना शिला लेख और किया स्थापित अपना युग,
आज यदि जाते हो तुम, तो मिटा जाना अपने स्वाक्षर का प्रत्येक चिह्न।

मैं जो था अकेला, एक अविचल, अलोढ़ शिला
केवल वही छोड़ जाना तुम, साथ ले जाना लम्बा इतिहास,
जहाँ चाहे जाओ दूर, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, मिथिला,
बस मेरी आदिम सत्ता शून्य नील में होती रहे उच्छ्वसित।

और कुछ नही तो तोड़ दो अपनी शिला-उत्खनित स्मृतियाँ,
नष्ट कर दो निर्मूल सारे चमत्कारी भास्कर्य
छोड दो मुझे बिखरा हुआ इधर-उधर, आहार वर्षा का,
मैं नदी के बहाव में हो जाऊँ खण्ड-खण्ड, तैर जाये मेरा आवासी सर्प।

तुम कहाँ भागोगे बच कर, तुम्हारा स्मारक तो है यही पर्वत
धूर्त अगस्त्य के सम्मुख भी उस ने कभी झुकाया नही अपना शीश॥

তাই শিল্পে

তাই শিল্পে সত্তা শুদ্ধ; তবু জানি জীবনই আকাশ,
শিল্প শুধু মেঘ, জ্যোৎস্না, মাঘী রৌদ্র, আষাঢ়ের ধারা।
শিল্প শুধু ইতিহাস, মুহূর্তের তোরণে পাহারা,
তড়িৎ মুহূর্তমাত্র, যদি বলো জীবনই অভ্যাস।

আমাদের প্রত্যহের বিড়ম্বিত দিনগুলি ঝরে
ফাল্গুন পাতার মতো, চৈত্রে কোনো রাখে না আশ্বাস;
আমাদের দুঃস্থতার গ্লানি ওড়ে ধুলার বাতাস;
পরাগ ওড়ে না কোনো সৃষ্টিময় বসন্তমর্মরে।

জীবিকার ব্যর্থতায়, তিলে তিলে নিত্য আয়ুক্ষয়ে;
দৈনন্দিন বিকারের মজ্জাগত আনন্দের ভয়ে
কোটি কোটি লোক বাঁচি, নাকি মরি শাসনে শোষণে;
তাই, থেকে থেকে খুঁজি জীবনের তন্ময় ভাষণে,
প্রেমে, সখ্যে, প্রকৃতি বা সংগঠনে,—মানুষের জয়ে,

শিল্পের চিন্ময় কর্ম জীবনের ভঙ্গুর মৃন্ময়ে।।

इसी लिए शिल्प मे

इसी लिए शिल्प मे सत्ता शुद्ध है; फिर भी जानता हूं जीवन ही आकाश है,
शिल्प केवल बादल, ज्योत्स्ना, माघी धूप या फिर आषाढ़ की अविराम धार है,
शिल्प केवल है इतिहास, मुहूर्त के तोरण का पहरेदार;
तडित् है केवल मुहूर्त, यदि कहो जीवन ही अभ्यास है।

हमारे दैनिक जीवन के विडम्बित दिवस है झरते
फागुन के पत्तो की तरह, चैत मे नही है कोई विश्वास;
हमारे दुखी जीवन की ग्लानि उडती धूल भरी हवा मे,
पराग उडता नही किसी मृण्मय वसन्त की मर्मर ध्वनि मे।

जीवन की व्यर्थता में, तिल-तिल क्षरित होती आयु नित्य,
दैनन्दिन विकार के अन्तर्निहित आनन्द के डर से
करोड़ों लोग जीवित रहते, या मर जाते शासन या शोषण से,
इसी लिए, रह-रह कर ढूंढता हूँ जीवन के तन्मय भाषण मे
प्रेम, सख्य, प्रकृति या संगठन मे—मनुष्य की विजय,

जीवन के भंगुर मृण्मय मे शिल्प का चिन्मय कर्म ॥

परवासी

दुइ दिके वन, माझे झिकिमिकि पथ
एँके बेँके चले प्रकृतिर ताले ताले ।
रातेर आलोय थेके थेके ज्वले चोख,
नेचे लाफ देय रचि कचि खरगोश ।

निटोल टिलार पलाशेर झोपे देखेछि
हठात पुलके वनमयूरेर कत्थक,
ताँबुर छायाय नदीर मोलायेम किनारे
मिलियेछि तार सुषमा ।

चुपि चुपि आसे नदीर किनारे, जल खाय !
शुनेछि सिन्धुमनीर हरिण-आह्वान ।
चिता चले गेल लुब्ध हिंस्र छन्दे
वन्य प्राणेर कथाकलि बेग जागिये ।

कोथाय से वन, वसतिओ के बसेनि,
शुधु प्रान्तर, शुक्नो हाओयार हाहाकार ।
जङ्गल साफ्, ग्राम मरे गेछे, शहरेर
पत्तन नेइ, मयूर मरेछे पण्ये ।

केन एइ देशे मानुष मौन असहाय ?
केन नदी गाछ पाहाड एमन गौण ?
सारादेशमय ताँबु ब'ये कत घूरबो ?
परवासी कबे निजवासभूमि गड़बे ?

परवासी

दोनो ओर वन, झलझल करता पय बीच मे
बढता जाता आंका-बांका प्रकृति की ताल पर
चमक-चमक उठती आँखें रात्रि के आलोक मे
लाँघा करते उछल-कूद मचाते पथ को शावक-दल ।

गोल-गोल टीलो पर देखा है झुरमुट मे पलाश के
अकस्मात् हर्षित-पुलकित कत्थक वन्य-मोरों का,
तम्बू की छाया मे लघु सरिता की स्वर्ण सितारी पर
मैं ने स्वर-मेल किया है उन की सुन्दर सुषमा का ।

आते चुप-चुप जो जल पीने सरिता के कूल पर
बहुत सुने हैं सिन्धुमुनि के होते हरिण-आह्वान
वह देखो चीता जाता लुब्ध हिंस्र भाव लिये
करता उत्तेजित वन्यजीव का सब कथाकली-वेग ।

कहाँ गया वह वन अब ? बस्ती कोई बसी नही
नंगी धरती है केवल, हा-हा शून्य हवाओं की
कट गया सारा वन, ग्राम निःशेष, नगर अभी बसने को
शिल्प की शोभा वन-वन मोर सभी पण्य हुए ।

है मनुष्य क्यों इस देश मे इतना मौन-असहाय
क्यों नदी-वृक्ष-पर्वत सब बने हुए है गौण ?
कब तक रहें घूमते लादे अपने डेरे-तम्बू ?
होगा निर्मित कब परवासी का घर अपने घर मे ?

चिरऋणी

पौंछलुम भोरेर आकाशे,
तखनओ जहानो रात्रि गाछे थामे माटिते पाथरे।

निस्तब्ध वातासे बाजे नूड़िर स्वरद आर जलेर मेतार
नानान कलिते छुँये छुँये कोमले कड़िते पाश केटे
आशावरी योगिया तोड़िते।

हाड़ने झोपेर डाके ढुके देखि एकटि झलक
शुधु दुटि चोख ज्वले, आसन्न संत्रासे स्थिर
घृणाय ओ भये निष्पलक संवृत चितार दुटि चोख।

सारा दिन जरिपेर अरण्यरोदन।
बाड़्छेय घनाय रात्रि,
तामा दिये लोहा दिये गड़ा अन्धकार,
अथच भितरे छोटे सरीसृप हाजार मंनय।

च'ले गेछे खिद्मद्गार तार दूर ग्राम्य घरे।
आमि एका ब'से आछि परिश्रान्त
घूमेर नदीर यात्री कण्टकित अरण्येर नाना नैशस्वरे।

आर थेके थेके मुहुर्तेर अवश असाड़ स्तब्धतार अतल सागरे
डुबे याइ आर भेसे उठि, ताकाइ दुयारे खिल किना।

यखन झिंझिर वीणा माझरातेर मैहारो रागिनी
धरे धरे प्राय,

चिरऋणी

भोर की वेला थी जब पहुँचा,
अलस पड़ी थी ढलती रात घास पेड़ मिट्टी और शिलाओं पर।

निस्तब्ध हवा में बजती थी कंकड़ियों की सरोद जल-सितार की संगत में
मनमानी तानों के टुकड़े भरती कोमल तीव्र स्वरों को छूती सी
असावरी तोड़ी और जोगिया के।

सहसा खड़का कुछ झाड़ी में दहिने—मात्र झलक ही देखी
दो आँखें थी झलझल जलतीं आसन्न त्रास से हुई स्थिर
थी निष्पलक घृणा और भय से आतत वे आँखें दो चीते की।

दिन तो सारा हुआ जरीब-फ़ीते में अरण्यरोदन।
बँगले लौटा तब घना रही थी रात,
ताँबा लोहा मिश्रित था वह अन्धकार,
फिर भी रेंग रहे थे भीतर शत-शत सरीसृप संशय के।

परिचारक जा चुका था कब का दूर गाँव के अपने घर।
मैं अकेला हूँ, बैठा हूँ क्लान्त परिश्रान्त
निद्रा नदी का यात्री होता कण्टकित वन के नाना नैशस्वरों से।

रह-रह कर जा रहता क्षण भर की तन्द्रिल निश्चलता के सागर में
डुबक डूब उतरा आता फिर देख उठता सिटकिनी बन्द द्वार की ओर।

जिस समय झिल्लिका वीणा पर मध्यरात्रि की बैहारी रागिनी
बस छेड़ने को ही थी,

अन्तरङ्ग एक डाके गरादेर फाँके देखि
आश्चर्य घनिष्ठ एकटि हरिण आर एकटि हरिणी
काचे नाक घेंषे आर मानविक चोख मेले देय
उद्वास्तु निर्भरे उपहारे।

जीव जगतेर काछे सेइ थेके आमि चिरऋणी॥

कि सुन पड़ा सहसा परिचित स्वर, देखा फाँक से जँगले की
एक हरिण एक हरिणी अत्यन्त घनिष्ठ भाव से
घिसते काँच पर नाक बड़ी मानविकता से आँखों में मेरी आँखें दिये
लिये सहानुभूति का उपहार इस अगृही के लिए।

उस दिन से हूँ आज तक जीवजगत् का चिरऋणी॥